Chapter-5

" पंचम - अध्याय "

वैयक्तिक पक्ष {नाटकों के परिप्रेक्ष्य में}

"पंचम अध्याय"

वैयक्तिक पक्ष - {नाटकों के परिप्रेक्ष्य में}

प्रथम अध्याय में "वैयक्तिक-चेतना" की परिभाषा देते हुए उसके विकास को स्पष्ट किया जा चुका है । जैसाकि उल्लेख किया गया है कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में हुए विभिन्न सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक आन्दोलनों ने जहाँ एक और समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, रूढ़ियों व धार्मिक बाह्याडम्बरों को दूर किया, वहीं समाज को नये चिन्तन, नये दृष्टिकोण भी प्रदान किये, साथ ही नारी वर्ग व निम्न वर्ग को स्व-अधिकारों तथा स्व-अस्तित्व के चेतना से सम्पृक्त किया । इस प्रकार उस समय की "वैयक्तिक चेतना" को समाजोन्मुखी बनाये रखा, जिसका प्रभाव स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कुछ समय तक बना रहा । यही कारण था कि तत्कालीन परिवेश में राजनीति व समाज में देशप्रेम, देश कल्याण, त्याग, सेवाभाव जैसे उच्च मूल्य बने हुए थे । समाज में ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, परोपकार आदि शाश्वत् मूल्यों का प्रभुत्व बना रहा । व्यक्ति अपने हित को गौण व समाज को प्रमुखता देता रहा । दूसरे शब्दों में कहें तो व्यक्ति अपने अस्तित्व व विकास के विषय में समाज से हटकर नहीं सोचता था । इस प्रकार उस समय तक "व्यक्ति चेतना" "पर" की भावना अभिप्रेरित थी, किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के समय व पश्चात् उत्पन्न विभिन्न जटिलताओं, विषमताओं तथा समस्याओं ने विषैला वातावरण निर्मित कर दिया, जिसका प्रभाव व्यक्ति के मन और मस्तिष्क पर पड़ा । इस तथ्य का विस्तृत विवरण द्वितीय अध्याय में दिया गया है । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् की आपाधापी में व्यक्ति आत्मकेन्द्रित होता गया । सन् 60 तक आते-आते समाज में ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठता, परोपकार आदि के भाव धूमिल होने लगे ।

-: :-

राजनीति के क्षेत्र में तो विस्फोटक स्थिति पैदा हो गई । नेता वर्ग स्व उदर पूर्ति, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, भाषावाद में लिप्त होकर देश की उन्नति के स्थान पर अवनति का कारण बनने लगे । "इस बीच की पूरी राजनीतिक स्थिति कुछेक नेताओं और उनके आश्रयदाता-पूंजीपतियों-व्यापारियों के इर्द-गिर्द ही चक्कर लगाती रही । कारण सिर्फ यही था कि स्वतंत्रता राष्ट्रीय चेतना से दूर और व्यक्ति चेतना के नजदीक होती गई और हमारा जनतंत्र देश के "कुछ व्यक्तियों के लिए" तक ही मानों सिमटकर रह गया । देश के इने-गिने व्यक्तियों के स्वार्थ कीवेदी पर राष्ट्र की बहुसंख्यक जनताा के हितों की बलि होनी शुरू हुई । देश के सारे साधन स्रोत व्यक्तिवादिता के चरणों में समर्पित हो गये । करोड़ों व्यक्तियों के चेहरों की मुस्कान छीनकर कुछ व्यक्तियों ने अपने मुंहों पर जबरन थोप ली ।"[1] औद्योगीकरण ने समाज में संयुक्त परिवारों को विघटित कर दिया । संयुक्त परिवार टूटे और लघु परिवार टूटन के कगार पर खड़े हैं । यहां तक कि पति-पत्नी के बीच अदृश्य सी दीवार ऊँची होती जा रही है । अर्थात् सन् 60 के पश्चात् की संकीर्ण वैयक्तिक चेतना" ने "स्व" परक मार्ग अपना लिया है । इस दिशा में विज्ञान, औद्योगीकरण, बौद्धिकता आदि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है ।

समकालीन व्यक्ति आत्म केन्द्रित होता जा रहा है । अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए वह समाज व देश का अहित करने में भी संकोच नहीं करता । अपनी पत्नी व बच्चों से अजनबी बना व्यक्ति एकाकीपन के अहसास से घुटा जा रहा है और मुक्ति की खोज में सामाजिक मार्यादाओं ,नियमों व मूल्यों को तोड़ रहा है या उनकी अपने स्वार्थ

- - - - - - - - - - - - - - - -

1.

...

-: :-

के अनुरूप व्याख्या कर रहा है । साठोत्तर नाटक साहित्य में इन तथ्यों को यथार्थ रूप से उद्घाटित किया है । प्रस्तुत अध्याय में नाटकों के संदर्भ में "वैयक्तिक चेतना" से प्रभावित प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया जायेगा ।

तृतीय अध्याय में "कृति परिचय" से स्पष्ट हो जाता है कि साठोत्तर हिन्दी नाटकों में प्राचीन मान्यताएं तथा थोथे आदर्श व सारहीन मूल्य खण्डित हो रहे हैं , अपना प्रभाव त्याग रहे हैं और इनके स्थान पर युगानुरूप नवीन प्रवृत्तियां या नवीन मूल्यों के स्थापन की प्रक्रिया अधिकाधिक दृष्टिगोचर हो रही है । समकालीन हिन्दी नाटक "काम" और "अर्थ" को मुख्य आधार मानकर लिखा जा रहा है । तेन्दुआ, देवयानी का कहना है, तीसरा हाथी, उत्तर-उवर्शी, शव-यात्रा, सम्भवामि युगे-युगे, भस्मासुर, एक और द्रोणाचार्य, "सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक" द्रौपदी, नरमेध, तिलचट्टा, मरजीवा आदि अन्य अनेक नाटक इसी विचारधारा पर आधारित हैं ।

बौद्धिकता एवं उसका प्रभाव :

द्वितीय अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है कि जैसे जैसे स्वतंत्र भारत में पाश्चात्य शिक्षा, विज्ञान, औद्योगिक विकास आदि का प्रभाव बढ़ता गया, वैसे वैसे व्यक्ति में बौद्धिकता का समावेश होने लगा । वह नये चिन्तन व नवीन दृष्टिकोणों से सम्पृक्त होता गया । इस तीव्रतर होती बौद्धिकता ने व्यक्ति के मन में संस्कारों ,परम्परागत मान्यताओं तथा मूल्यों के प्रति नकारात्मकता के बीज बोये, उसकी

अनुभूतियों व संवेदना को प्रभावित किया । साथ ही सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा नैतिक प्रतिमानों पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगा दिया । बदलती दृष्टि और चिन्तन के परिणामस्वरूप स्वेच्छाचार अराजकता, अजनबीपन, मूल्यहीनता तथा अनास्था के भाव उत्पन्न हो गये । व्यक्ति समाजिकता से कतराने लगा और अपने आपको अपने तक सिमटने में संलग्न हो गया । यही कारण है कि आधुनिक बौने बने हुए व्यक्ति की स्थिति अत्यंत विडम्बनापूर्ण हो गई है । सन् 60 के पूर्व के हिन्दी नाटकों में बदलती बौद्धिक चेतना का इतना अधिक चित्रण नहीं हुआ है जितना आलोच्यकालीन नाटकों में ~~बदलती बौद्धिक चेतना का इतना अधिक चि~~ परिलक्षित होता है । "देवयानी का कहना है" (रमेश बक्षी) की देवयानी, "अपनी पहचान" (सुदर्शन चौपड़ा) की अर्पणा, टगर (विष्णु प्रभाकर) की टगर, कुत्ते (सुरेश चन्द्र शुक्ल "चन्द्र") की नायिका आभा, तीसरा हाथी (रमेश बक्षी) की विभा, और सोहन, "वाह रे इन्सान" कान्ति व तुलसी बौद्धिकता से प्रेरित पात्र हैं । "आधे-अधूरे (मोहन राकेश) की सावित्री बौद्धिकता से सम्पन्न है । वह अपने आत्मविश्वास को खो चुके , लिजलिजे पति से असंतुष्ट होकर "पूर्ण पुरूष" की तलाश में भटकती हुई सामाजिक मर्यादाओं को नकारती है और अन्य अनेक पुरूषों से सम्बन्ध स्थापित करती है । "बिना दीवारों के घर" (मन्नू भण्डारी) की नायिका शोभा शिक्षित तथा आत्मनिर्भर होकर स्व-अस्तित्व की भावना से प्रेरित हो घर को त्याग देती है । इसी नाटक में अन्य नारी पात्र मीना पति की अपेक्षा स्वाभिमान को अधिक महत्त्व देती है । वह अन्य नारी की ओर आकर्षित पति जयंत को तलाक देकर समाज सेवा के

कार्यों की ओर उन्मुख हो जाती है । "घरौंदा" ‍(शंकर शेष) नाटक का सुदीप बौद्धिकता से प्रेरित हो उच्च वर्ग के साथ टक्कर लेता है ।

स्वातंत्र्योत्तर कालीन परिस्थितियों, संवैधानिक तथा राजनैतिक प्रवृत्तियों ने निम्न वर्ग को चेतनशील बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । सदियों से उपेक्षित इस वर्ग को उन्नतिशील बनाने का प्रयास किया है । "मजदूर यूनियन" "मजदूर संघ" "दलित शोषित संघर्ष समाज समिति" जैसी संस्थायें बनने से इस वर्ग में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आई है । "वाह रे इन्सान" (रमेश मेहता) के निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र कान्ति और तुलसी पूंजीपति सम्मत राय के अत्याचारों के विरूद्ध आवाज़ उठाते हैं । "सुनो शेफाली" (कुसुम कुमार) की नायिका हरिजन युवती शेफाली स्व अस्तित्व बोध के कारण सवर्ण बकुल के साथ विवाह करने से इनकार कर देती है ।

जैसाकि द्वितीय अध्याय में उल्लेख किया जा चुका है कि पाश्चात्य सभ्यता ने आधुनिक व्यक्ति को मस्तिष्क से अधिक जोड़ दिया है । पश्चिमी भौतिकवादी सभ्यता ने भारतीय जागरूक वर्ग को काल्पनिक तथ्यों से, विश्वासों से काट कर यथार्थपरक तत्वों से सम्पृक्त कर दिया है । उसे समाज द्वारा खींची गई लक्ष्मण रेखा से बाहर निकाल स्वच्छंद विचरने को प्रोत्साहित किया है । इस प्रक्रिया में कुछ मूल्य, मान्यतायें ध्वस्त हुई है तो कुछ नई स्थापित भी हो रही है । इनसे नैतिकता को व्यापक सीमा तक प्रभावित किया है ।

समकालीन समाज में तीव्र विकसित होती बौद्धिकता ने व्यक्ति में अहम्‌वादी तथा व्यक्तिवादी चिन्तन को अधिक उभारा है ।

"अपनी पहचान" में उत्तम व अर्पणा अपने-अपने दायरे में सिमटे हुए ऐसे ही पात्र हैं जिनका परिवार उनके अहम् भाव की चोट से टूट जाता है, सम्बन्ध जड़ हो जाते हैं । नाटक का अन्य पात्र डा0घटक उत्तम से कहता है -"उसने तो सिर्फ इतना बताया कि दो अहम्वादी व्यक्तित्व आपस में टकरा गये और टक्कर में दोनों घायल हो गये ।"[1] बौद्धिकता से जुड़ी "वैयक्तिक चेतना" से प्रेरित "देवयानी का कहना है" कि देवयानी प्राचीन मान्यताओं व संस्कारों को नकारती हैं । भारतीय विवाह प्रणाली की नयी व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहती है -" शादी केवल एक पास है जिसको हाथ में रखने से खुले आम घूमने एक साथ बिस्तर में सोने और दुर्घटना के समय सामाजिक विरोध न होने का सार्टिफिकेट मिल जाता है ।"[2] "सुनो शेफाली" की शेफाली उच्च वर्गीय बकुल से विवाह नहीं करती क्योंकि वह उसकी दयादृष्टि पर जीना नहीं चाहती । इससे उसका स्वाभिमान आहत होता है । वह अपनी माँ से कहती है -"मुझ पर रहम खाकर कोई मुझसे शादी करे, नहीं चाहिये मुझे ऐसी शादी ।"[3] शेफाली अपने सम्मान व अस्तित्व के प्रति अत्याधिक जागरूक है । वह बौद्धिक चेतना के धरातल पर नैतिकता व पवित्रता को भी नकारती है ।"[4] आधुनिका ,शिक्षिता नारी आर्थिक रूप से स्वतंत्र होकर अपनी मालिक स्वंय बनना चाहती है । अब वह केवल - पिता,पति या पुत्र के संरक्षण में नहीं अपितु स्वतंत्र रहने की इच्छा करती है । आज उसे अपने "कैरियर" के

1- अपनी पहचान - सुदर्शन चौपड़ा - पृ0-43

2- देवयानी का कहना है - रमेश बक्षी - पृ0 24

3- सुनो शेफाली - डा0 कुसुम कुमार- पृ0-57

4- सुनो शेफाली - डा0 कुसुम कुमार - पृ0-58

के समक्ष पवित्रता, मर्यादा, पातिव्रत्य जैसे मूल्य गौण नजर आ रहे हैं। "सादर आपका" की लज्जावती "पोस्ट" व "हैसियत" की दौड़ में पति से आगे निकलकर, अपने अहम् भाव के कारण पारिवारिक सम्बन्धों को नकारती है, वैवाहिक मर्यादाओं को धूमिल करती है। वह महत्वपाकांक्षी तथा अहम् भाव से मुक्त नारी है जो पद पाने की इच्छा से अन्य अनेक पुरूषों के सम्पर्क में आकर शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करती है। वह पति की अवहेलतना करती हुई नैतिक मूल्यों, आदर्शों तथा शील को व्यर्थ का बंधन समझती है।"[1]

"टगर" की नायिका टगर पति द्वारा आत्म सम्मान को ठेस पहुंचाये जाने पर समस्त पुरूष जाति से बदला लेने पर उतारू हो जाती है। "सोचा था, पुरूष जाति से बदला लूंगी। उसने मुझे एक बार छोड़ा है, मैं बार बार पुरूषों को छोडूंगी।"[2] इस प्रकार बौद्धिकता के आधार पर नारी अपना मार्ग स्वंय चुन रही है, पति पिता या अन्य सम्बन्धी को निर्णय की अपेक्षा आज उसे अनुभव नहीं हो रही है। पाश्चात्य का अंधानुकरण कर रही कुछ तथा कथित आधुनिक नारियाँ एक से अधिक पुरूषों के साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करना अपनी स्वतंत्रता का लक्षण मान बैठी हैं। तिलचट्टा (मुद्राराक्षस) की केशी, आधे-अधूरे (मोहन राकेश) की सावित्री, "देवयानी का कहना है" (रमेश बक्षी) देवयानी, नरमेध की बंती आदि ऐसी ही नारियाँ हैं।

1- सादर आपका - दया प्रकाश सिन्हा - पृ0 20

2- टगर - विष्णु प्रभाकर - पृ0-71

आधुनिक युग विज्ञान का युग है । विज्ञान ने भी मानव को बौद्धिक बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । विज्ञान ने व्यक्ति को तर्कवादी दृष्टि प्रदान की है । इसलिए आज वह प्रत्येक वस्तु को तर्क की कसौटी पर परख रहा है । फलतः आज के समाज में प्राचीन काल से चले आ रहे मूल्य, धार्मिक तथा नैतिक विश्वास धूमिल पड़ते जा रहे हैं । विज्ञान के प्रभाव ने ही व्यक्ति को यांत्रिक बना दिया है । हृदय, भावना, आदर्श जैसे शब्द आज बेमानी हो गये हैं । "तीसरा हाथी" नाटक में सोहन मोहन से कहता है -"यानि आप एक ढहती हुई जर्जर चीज़ को हमेशा ढोते रहना चाहते हैं और जब उसका कोई उपयोग नहीं है ।"[1] अति बौद्धिकता ने "भावना" के स्थान पर "उपयोगिता" तथा "त्याग" के स्थान पर "स्वार्थ" भावना को स्थापित किया है । आर्थिक संकट से त्रस्त व्यक्ति परिवार के प्रति दायित्व व स्नेह को भूल कर अपने में जीने की कोशिश में लगा है । "घरौंदा" नाटक में सुदीप अपनी प्रेमिका छाया पर व्यंग्य करता है क्योंकि उसने अपने भाई की आर्थिक मदद की थी -" तुमने एक महान् , आदर्श, ममतामयी बहन होने का खिताब पा लिया । पूरा परिवार तुम्हारे गुण गा रहा है ।"[2]

जैसाकि उल्लेख किया जा चुका है कि पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली पर आधारित आधुनिक शिक्षा पद्धति ने बौद्धिकता को अत्यधिक विकसत किया है । समसामयिक परिवेश में बौद्धिकता से अब केवल शहर ही नहीं अपितु गाँव भी इस वातावरण से अछूते न रह सके । औद्योगीकरण,

---

1- तीसरा हाथी - रमेश बक्षी - पृ0-21

2- घरौंदा - डा0 शंकर शेष - पृ0 -45

यातायात की सुविधाओं के परिणामस्वरूप गांवों व शहरों की दूरी घट जाने के कारण गांवों में भी इसका प्रभाव पड़ने लगा । "कंजरीबन" (डा० लक्ष्मी नारायण लाल) नाटक में कजरी के माध्यम इस तथ्य को बखूबी उभारा गया है । कजरी अल्पशिक्षित है लेकिन बौद्धिक है । वह अपने कर्तव्य और अस्तित्व के प्रति जागरूक है । अपने पति द्वारा त्याग दिये जाने पर वह पूरे साहस के साथ गांव वालों द्वारा किये गये अत्याचारों का मुकाबला करती है । वह किसी पर आश्रित नहीं रहती । वह उन सती-सावित्री का खिताब पा लेने वाली नारियों में से नहीं है जो पति के अत्याचारों को पति-परमेश्वर का प्रसाद मानकर स्वीकार करे, किन्तु वह ऐसी नारी भी नहीं है जो अपना अनुचित उपयोग होने दे । इस प्रकार वह कर्तव्यनिष्ठ, जागरूक महिला है । कपास के फूल (जगदीश चतुर्वेदी) तथा "भूमि की ओढ़" (सुरेश चन्द्र शुक्ल "चन्द्र") माटी जाग रे (ज्ञान देव अग्निहोत्री) आदि नाटकों में गांव गांव में व्याप्त बौद्धिक चेतना को चित्रित किया गया है ।

इस प्रकार आधुनिक युग की बदलती परिस्थितियों में विज्ञान, शिक्षा, पाश्चात्य अंधानुकरण तथा बढ़ते औद्योगिक परिवेश मे व्यक्ति को हृदयशून्य बना दिया है । उसका संबंध मस्तिष्क से अधिक जोड़ दिया है । आधुनिक परिवेश की विषमताओं में व्यक्ति की भावनाओं ने इतना आघात सहन किया है कि उसकी भावनाएं जड़ीभूत हो गई हैं चेतना विहीन सी हो गई हैं । ऐसी स्थिति में बुद्धि तत्व ने अपना विस्तार कर लिया है । आधुनिक चिन्तन, पारिवारिक, सामाजिक सम्बन्ध, नैतिक व धार्मिक धारणाएं, सभी में बुद्धि तत्व प्रधान होता

जा रहा है । इस तीव्र होती बुद्धिवादिता ने "वैयक्तिक चेतना" को भी प्रभावित किया है । फलत: समाज में "आदर्श चेतना" की अपेक्षाकृत "यथार्थ चेतना" व "भौतिक चेतना" अधिक व्यापक रूप में परि - लक्षित हो रही है ।

स्व-अस्तित्व की भावना :

जैसाकि पूर्ववर्ती अध्यायों में संकेत दिया जा चुका है कि ज्यों ज्यों आधुनिक शिक्षा का विस्तार होता गया, त्यों-त्यों व्यक्ति नवीन चिन्तन से प्रेरित हो स्व-अस्तित्व बोध और स्वाभिमान के भाव बोध से सम्पृक्त हुआ । लेकिन बौद्धिकता से प्रेरित "वैयक्तिक चेतना" "स्व" के दायरे में निबद्ध होने लगी । अर्थात् समकालीन परिस्थितियों से संघर्षरत व्यक्ति की वैचारिकता, उसकी तर्क बुद्धि स्वंय के बारे में अथवा स्वंय के हित में झुकती चली गयी । फलत: व्यक्ति स्वपरक होता गया, अपने "अहम" में डूबता गया, अपने से संतुष्ट अपने लिए जीने लगा । इलाचन्द्र जोशी के शब्दों में -"आधुनिक समाज में पुरूष की बौद्धिकता ज्यों ज्यों बढ़ती जा रही है, त्यों त्यों उसका अहम् भाव तीव्र से तीव्रतर और व्यापक से व्यापकतर रूप ग्रहण करता चलता है ।"[1] आधुनिक व्यक्ति के व्यापक रूप धारण करते अहम् भाव, स्वअस्तित्व बोध की भावना का सत्य व तथ्यपरक चित्रण गत दो दशकों के नाटकों में बहुधा परिलक्षित होता है । इस स्व अस्तित्व बोध का ज्ञान आज नारी वर्ग और निम्न वर्ग को विशेषत: हुआ है क्योंकि इन्हीं दो वर्गों के अस्तित्व को समाज ने नगण्य मान कर अस्तित्वहीन समझा था लेकिन आधुनिक परिस्थितियों में ये दोनों ही तीव्रता से उभर कर अपना स्थान खोज रहे हैं ।

1- विवेचना - इलाचन्द्र जोशी - पृ0 124

उल्लिखित है कि शिक्षा व आर्थिक आत्मनिर्भरता ने नारी को नई मानसिकता प्रदान की है । वह अपने अस्तित्व बोध को पहचान कर नई दिशा की ओर अग्रसर हो रही है , अपने व्यक्तित्व के नये आयामों को खोज रही है । "बिना दीवारों" के घर {मन्नु भण्डारी} की मैट्रिक पास शोभा उच्च शिक्षा प्राप्त कर, प्रिंसीपल बन जाने के पश्चात् अपने आत्मविश्वास से साक्षात्कार कर अपनी शक्ति को पहचान लेती है । उसमें नया व्यक्तित्व उभरता है और जब पति द्वारा वह व्यक्तित्व आहत होता है तो वह कह उठती है -"------ कभी मेरी भावनाओं को भी समझने की कोशिश की है ------"[1] "लैहरों के राजहंस" {मोहन राकेश} में अस्तित्व की रक्षा हेतु नन्द का सुन्दरी व बुद्ध के प्रति मूक विद्रोह आज के व्यक्ति का भौतिकता व आध्यात्मिकता के प्रति विद्रोह को व्यक्त करता है । स्व अस्तित्व की भावना से प्रेरित देवयानी {देवयानी का कहना है} अपने पति से कहती है -"साधन अपनी इच्छा के अनुसार अपनी बीबी को पैर की जूती वगैरा समझना था तो गोंडा या गया से कोई लड़की ले आते । मैंने जो भी किया ठीक किया है । कोई भी गलती नहीं की है ।"[2] इतना सुन कर साधन का "पति अहम्" भाव उभर जाता है ,तो देवयानी उसको त्यागने को तैयार हो जाती है । वह कहती है -"तुम्हारे साथ में आने की पहली शर्त यह थी कि तुम कोई भी आर्ष वाक्य नहीं बोलोगे और दूसरों को "कोट" कर करके मुझे जीने की दिशा नहीं बतलाओगे । इतने पर भी अगर तुम अपने आपको तीसमार खाँ समझते हो तो {जाकर अटैची उठा लेती है} आई वुड प्रस्थान ।"[3] इस प्रकार प्रस्तुत नाटक

1- बिना दीवारों के घर - पृ0-45

2- देवयानी का कहना है - रमेश बक्षी -पृ0 16

3- देवयानी का कहना है - रमेश बक्षी -पृ0 16

में देवयानी और साधन में अस्तित्व का संघर्ष सशक्त रूप से उभरता है । यह आधुनिक परिस्थितियों की ही देन है कि देवयानी का अस्तित्व पति के अधिकार को स्वीकार नहीं कर पाता है । इसलिए देवयानी आधुनिक शिक्षा तथा आत्मनिर्भरता के कारण परम्परागत मूल्यों से युक्त दाम्पत्य जीवन का निर्वाह नहीं कर पाती । स्व-अस्तित्व का बोध केवल मात्र शहर में बसने वाली शिक्षित नारी को ही नही है अपितु गांवों में भी इसकी लहर पहुंचती जा रही है । "कजरीबन" {डा०लाल} की नायिका कजरी पति द्वारा परित्यक्त होने पर धैर्य व साहस से गांव की औरतों के व्यंग्यबाण सहती हैं और जब उसका पति आता है तो उसका स्वाभिमान जाग्रत हो उठता है । उसे अपने पति से किसी प्रकार की संवेदना या सहानुभूति नहीं होती, अपितु वह उसे धिक्कारती हुई कहती है -"छिनार औरतों की बातों में आकर तू मुझे सजा देगा ? भगौड़ा । शक्की । डरपोक ईमानदार । ये झूठी बेरहम, कामचोर , अपने मर्दों और बच्चों से नफरत करने वाली, इनकी बातों पर मेरा पति विश्वास करे और मुझ पर शक -------- तेरे अन्याय से पहले मैं कर दूंगी न्याय । {पत्थर पर बांक की धार तेज़ करने लगती है} प्यार किया है -- कोई घास ~~नहीं काटा~~ नहीं काटा है । तू नहीं रहेगा तो क्या फरक पड़ता है ---"¹ कजरी परित्यक्ता होने के कारण गांव वालों की उपेक्षा का शिकार बनती है । इसीलिए उसके हृदय में पति के प्रति घृणा भरी हुई है । वह स्व -अस्तित्व व स्वाभिमान की भावना से सम्पन्न नारी है । उसे जीवन में इतनी विद्रूपताओं व विषमताओं

1- कजरीबन - डा० लक्ष्मी नारायण लाल - पृ०- 61

की अनुभूति होती है कि उसकी प्राचीन मान्यताओं तथा जीवन मूल्यों के प्रति आस्था हिलने लगती है ।

समकालीन परिवेश में तीव्र होती पाश्चात्य सभ्यता ने नारी को भी प्रभावित किया है । वह पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगी हुई प्राचीन मूल्यों को नकार रही है । अपने अस्तित्व व व्यक्तित्व को पश्चिमी सभ्यता की तराजू पर रखकर परख रही है । "दरिन्दे §हमीदुल्लाह§ नाटक में रति कहती है -"तुम एक कुल वधु हो सकती हो । मैं उन स्त्रियों में नहीं हूं जो अपने शरीर को फीडिंग बाटल बना देती हैं ।"[1] इसप्रकार शिक्षित , आत्मनिर्भर नारी अपने अस्तित्व के प्रति उत्तरोत्तर जागरूक होती जा रही है । अपने विकास में बाधक सिद्ध हो रहे मर्यादा, मूल्यों तथा परम्पराओं को तोड़ रही है ।

जैसाकि स्पष्ट किया जा चुका है कि युगीन परिस्थितियों तथा संविधान ने निम्न वर्ग में स्व अस्तित्व की ज्योति को और अधिक तीव्र किया । आज निम्न वर्ग उच्च वर्ग से , समाज के ठेकेदारों से अपने अधिकारों के लिए आवाज बुलन्द कर रहा है । उसमें नई चेतना तथा जागृति आई है । "सुनो शेफाली" की हरिजन युवती शेफाली उच्च वर्ग के बकुल व उसके पिता दीक्षित जी के सामने अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए झुकना स्वीकार नहीं करती । वह विवाह पूर्व ही बकुल से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित कर लेती है,पर उससे विवाह करने से इन्कार कर देती है, क्योंकि बकुल का पिता

1-दरिन्दे - हमीदुल्लाह - पृ0 33

निम्नवर्गीय शेफाली की आड़ में चुनाव जीतना चाहता है ।इसीलिए चुनाव के निकट समय में वह विवाह का प्रस्ताव रखता है, लेकिन स्वाभिमानी शेफाली दया का पात्र नहीं बनना चाहती । वह अपनी माँ से कहती है -"उनकी दया का पात्र बनना होता तो मेरी शादी के खील बताशे तुम भी कब के बाँट चुकी होती । ---- अम्मा मैं कैसे ना सोचूं कि हम उनकी दया के पात्र होने के अलावा भी कुछ हैं ।"[1] शेफाली बकुल के पिता की चाल से परिचित है,इसलिए वह अपने को "राजनीति का मोहरा" नहीं बनने देती । दीक्षित की स्वार्थपूर्ण समाज सेवा के लिए कहती है -"वह क्यों शादी करना चाहते हैं मुझसे अभी -- इसी वक्त ----- मैं खूब समझती हूं । बाप बेटा अपनी समाज सेवा की हथेली पर सरसों जमाना चाहते हैं ---- एक हरिजन लड़की का उद्धार किया उन्होंने ------ यही कह कर अपने लिए जिन्दाबाद के नारे लगवायेंगे -------- और मैं ?---- उनके विज्ञापन का वाक्य बनी ।"[2] "वाह रे इन्सान" का पात्र कान्ति अपने अधिकारों के प्रति सजग है । वह कहता है -"इन इमारतों के मालिक हमेशा के लिए जुल्म नहीं ढाह सकते हम पर । ये जुल्म ओ सितम की जंजीरें तो उसी दिन तक हैं प्रोफेसर, जब तक हम सो रहे हैं और जिस हमने करवट बदल ली, ये जंजीरें कांच के टुकड़ों की तरह चूर-चूर कर दी जायेंगी ।"[3] कान्ति की पत्नी तुलसी, अपने मालिक सम्पतराय का, अनुचित बात कहने पर, विरोध करती है । वह अपनी इज्जत व अस्तित्व के प्रति सजग है ।

1- सुनो शेफाली - डा0 कुसुम कुमार - पृ0 59
2- - वही - - पृ0 58
3- वाह रे इन्सान - रमेश मेहता - पृ0-23

अपने मालिक को धमकी देते हुए कहती है - "------ और आप भी यह न भूलियेगा कि नौकरों की भी इज्जत होती है ।"[1] आज के बदलते परिवेश ने सदियों से दासता तथा गुलामी की जंजीरों से बंधे, समाज के उपेक्षित निम्न वर्ग को जागरूक बनया है । फलत: आज वह अपने अधिकारों के प्रति चेतन है और अधिकार न मिलने पर हड़ताल, तालाबन्दी का भी सहारा ले रहा है । "रात -रानी" नाटक में मजदूर वर्ग मिल-मालिक जयदेव के अत्याचारों से त्रस्त होकर आवाज बुलन्द करता है -"ये अपनी जबान सम्भाल कर बातें किया करें --- नहीं तो ------ ।

दूसरा व्यक्ति - हर बात में इनके मुंह से गाली निकलती है ।

तीसरा और चौथा -(एक संग) अब हम कतई बर्दाश्त नहीं करेंगे ।"[2]

समकालीन बौद्धिक परिवेश में शिक्षा व पश्चिमी प्रभाव के कारण युवा वर्ग व पुरानी पीढ़ी का वैचारिक द्वंद्व उग्र रूप से उभर कर सामने आ रहा है । युवा पीढ़ी अपने अस्तित्व तथा अधिकारों की रक्षा हेतु माता-पिता, बहन-भाई तथा समाज के प्रति विद्रोह कर रहा है । बड़ों के प्रति आदर-भाव, आज्ञापालन को "पिछड़ेपन" की संज्ञा से विभूषित कर रहा है । "तीसरा हाथी" में रोशन अपने पिता को सम्बोधित करते हुए कहता है -" आपको कोई अधिकार नहीं कि मेरे बीच में आये । (टहलता है) एक जरा सी बात है कि मैं अपनी पसन्द से शादी करना चाहता हूं । मैं जहाँ रहता हूं वहाँ

1- वाह रे इन्सान - रमेश मेहता - पृ0 79
2- रात-रानी - डा0 लक्ष्मी नारायण लाल -पृ0-6।

कोई मुझसे प्यार करती है । यह मत समझिये कि आपसे पूछ रहा हूं तो आपके आशीर्वाद से ही जीवन ढोऊंगा ।"[1] आज की युवा पीढ़ी इतनी स्वतंत्रताप्रिय हो गयी है कि उसे घर जेल के समान लगता है और माता-पिता तानाशाही शासक की तरह प्रतीत होते हैं । "सादर आपका" में रेखा अपनी माँ से कहती है -"मैं चाहे जहाँ जाऊं, कुछ भी करूं, किसी से भी मिलूं - तुमसे मतलब कौन होती है मुझसे पूछने वाली ॥"[2] तीसरा हाथी" की विभा अपने पिता के अत्याचारों, उनकी तानाशाही से दुखी होकर, घर की मान-मर्यादा, परम्परा को ताक में रखकर अपने प्रेमी अमित से विवाह के लिए कहती है --"" मैं अमित, उनकी तेरहवीं से पहले शादी कर लूंगी । इस घर की सीनियरटी, इस घर का सम्मान, मान-प्रतिष्ठा सबको ताक में रख दूंगी ---- । तुम नहीं जानते अमित मैं अंदर से कितनी घुट रही हूं लेकिन ऊपर की परत इतनी सख्त है कि ताकत लगाने पर भी टूटती नहीं ।"[3]

अतः स्पष्ट हो जाता है कि आलोच्य कालीन नाटकों में बौद्धिकता व "वैयक्तिक चेतना" के परिप्रेक्ष्य में तीव्र होती स्व अस्तित्व के भाव का चित्रण किया गया है । स्व अस्तित्व भाव बोध से प्रेरित नारी जहाँ एक ओर रूढ़िमुक्त होकर, नये चिन्तन से सम्पृक्त हो देश व समाज को उन्नति की ओर अग्रसर कर रही है, वहीं दूसरी ओर उसका अस्तित्व बोध पारिवारिक व सामाजिक मर्यादाओं, तथा नैतिक मूल्यों के विघटन का कारण बन रहा है । युवा पीढ़ी प्राचीन

1- तीसरा हाथी - रमेश बक्षी - पृ0- 41

2- सादर आपका - दयाप्रकाश सिन्हा - पृ0-74

3- तीसरा हाथी - रमेश बक्षी - पृ0- 40

रूढ़ियों व अंधविश्वासों तथा प्राचीन स्थापनाओं को अस्तित्व बोध के कारण जीवनभर ढोने से इन्कार कर रहा है । उनके समक्ष माता-पिता की आज्ञा, सम्मान जैसे भाव तिरोहित होते जा रहे हैं । बौद्धिकता के इस परिवेश में निम्न वर्ग व अछूत वर्ग भी स्वाभिमान से सम्पृक्त होता जा रहा है । आज वह मालिक द्वारा किये गये अत्याचार और निर्धनता को कर्मों का फल या "नियति" कहकर स्वीकार नहीं करता, अपितु उनके विरूद्ध संघर्षरत है । कुत्ते {डा० सुरेश चन्द्र शुक्ल "चन्द्र"} वामाचार {रमेश बक्षी} उत्तर-उर्वशी {हमीदुल्लाह} खेला पोलमपुर {मणि मधुकर} करफ्यू {डा० लाल} टगर {विष्णु प्रभाकर} असुर-सुन्दरी {हृदय शंकर भट्ट} चिराग की लौ {रेवती सरन शर्मा} व्यक्तिगत, राम की लड़ाई {डा० लाल} एक और अजनबी { मृदुला गर्ग} आदि अन्य अनेक नाटकों में भी अस्तित्व बोध से प्रेरित , उसके लिए संघर्षरत व्यक्ति और समाज का द्वंद्व उद्घाटित किया गया है ।

{3} नारी-स्वतंत्रता - नये आयाम -

पूर्ववर्ती अध्यायों में यह विवेचित किया जा चुका है कि उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दियों में किये गये सांस्कृतिक एवं धार्मिक आन्दोलनों के द्वारा नारी के नये व्यक्तित्व को उभारा गया । उसे अन्य अनेक कुरीतियों, कुप्रथाओं तथा लादे गये नैतिक बन्धनों से मुक्ति प्रदान की । फलत: नारी अपने स्वाभिमान तथा अस्तित्व के प्रति जागरूक हुई । आज नारी नये व्यक्तित्व व नवीन चिन्तन से अभिप्रेरित है । अब वह पुरूष सापेक्ष नहीं है । अपने विकास के मार्ग

पर स्वंय अग्रसर हो रही है । पहले उसे पुरूष के नाम पर जिन बैसाखियों की आवश्यकता अनुभव होती थी, अब वह उन्हें त्याग कर अपने आप चलना सीख चुकी है । भारतीय पुरूष प्रधान समाज में उसे जिन अत्याचारों को विवशतावश सहन करना पड़ता है,आज वह शिक्षित हो, आत्म निर्भर बन कर ,उन अत्याचारों का जवाब मांग रही है । अपने अधिकारों के लिए लड़ रही है और विकास के नये आयाम स्थापित कर रही है । लेकिन कुछ उच्च मध्यम वर्गीय नारियां पाश्चात्य शिक्षा व सभ्यता से आकर्षित होकर प्राचीन मान्याताओं व परम्पराओं को बन्धन स्वरूप मानकर तोड़ रही है । "सामयिक नारी अनेक आवर्जनाओं से मुक्त, अपने ढंग से अपना जीवन जीने पर बल दे रही है । वह अपना व्यक्तित्व स्वाधीन रखना चाहती है ।"[1] नारी के इन व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मूल्य तथा स्वतंत्र दृष्टि-कोणों ने पारिवारिक और सामाजिक जीवन, उनके मूल्यों,आदर्शों तथा मान्यताओं को प्रभावित किया है । अद्यतन समाज में जो मूल्य संक्रमण की स्थिति दृष्टिगोचर हो रही है ,उसका एक मुख्य कारण नारी स्वातंत्र्य की भावना ही है । विगत दो दशकों के नाट्य साहित्य में नारी स्वातंत्र्य के भाव और उनका प्रभाव दोनों अत्यधिक परिलक्षित हो रहे हैं । "बिना दीवारों के घर"(मन्नु भण्डारी) की मीना ऐसी ही नारी है । "सादर आपका"(दया प्रकाश सिन्हा) की लज्जावती पति की अपेक्षा व्यक्तिगत स्वतंत्रता को अधिक महत्व देती है । वह अपने जीवन में शारीरिक एवं भौतिक सुखों को प्राप्त करना चाहती है । उसके इस भौतिकवादी चिन्तन ने परिवार में अलगाव ,अजनबीपन तथा कुंठित तत्वों को उत्पन्न कर दिया है ।

1- द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास -लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय-पृ0-35

लज्जावती अनैतिक ढंग से नौकरी और उन्नति प्राप्त करती है।"[1] इसीप्रकार "देवयानी का कहना है" ‌‌(रमेश बक्षी) की देवयानी व्यक्तिगत स्वतंत्रता के समक्ष माँ-बाप तथा पिता को महत्व नहीं देती। वह अपने पति साधन से कहती है -"एक टेलीफोन लगवा देना कि मैं अपने सारे दोस्तों से बात करती रह सकूँ।"[2] देवयानी परम्परागत भारतीय परिवार, दाम्पत्य जीवन तथा पति-पत्नी की मर्यादाओं को नकारती है। वह परम्परागत नारी के रूप को उपहास व घृणा से देखती है -"असल में साधन, तुम यही सब मुझसे चाहते हो। अगर मैं साड़ी पहनकर अपने मुन्ने-मुन्नी की उँगली पकड़कर, सिर में माँग भरकर तुम्हारा ऑफिस से लौटते वक्त दरवाजे में खड़ी हुई दिखूँ तो तुम्हारे पुरखे भी प्रसन्न हो जायेंगे--"[3] आधुनिक युग की नारी स्वतंत्रता का अर्थ "स्वच्छदंता" तथा मूल्यहीनता को मान बैठी है। आज वह हर प्रकार से पुरूष के समकक्ष आने की होड़ में लगी है। "दरिन्दे" (हमीदुल्लाह) नाटक में रति, सती से अपने मनोभाव इस प्रकार प्रकट करती है ----" मैं अपनी "नेचुरल अर्ज" पूरी करने के लिए पुरूष का साथ चाहती हूँ, बिलकुल उसी तरह जैसे कोई पुरूष किसी स्त्री का साथ चाहता है।"[4] आधुनिक शिक्षा तथा परिवेश ने नारी स्वातंत्र्य भावना को नये आयाम दिये हैं। "रात-रानी" (डा० लक्ष्मीनारायण लाल) की सुन्दरम् कुन्तल से कहती है ---"पढ़ी लिखी लड़कियों का यह सारा विवाह का चक्कर बड़ा ही अपमान जनक है। पति के माने इज्जत, मर्यादा नहीं, जो

1- सादर आपका - दया प्रकाश सिन्हा -पृ० - 21
2- देवयानी का कहना है - रमेश बक्षी -पृ० 20
3- देवयानी का कहना है - रमेश बक्षी- पृ० 20
4- दरिन्दे - हमीदुल्लाह - पृ०-33

विवाह के बाद कन्या को वर से मिलती है ,बल्कि पति के अर्थ होते हैं मालिक, मालिक माने खुदा नहीं, मालिक माने गुलाम वाला मालिक ।"[1] "एक और अजनबी" की शानी स्वतंत्र विचारों वाली युवती है । चूंकि उसका प्रेमी इन्दर उससे अधिक महत्व अपने "कैरियर" को देता है,इस लिए वह उसको छोड़ कर अन्य व्यक्ति से विवाह कर लेती है और विवाहोपरांत वह अपने पति को भी आदर नहीं दे पाती,क्योंकि वह कमजोर ,आत्मविश्वासहीन, चापलूस व्यक्ति है जो पदोन्नति के लिए पत्नी को साधन बनाता है । आत्मसम्मान से आहत शानी का आक्रोश फूट पड़ता है -"अगर मैं कहूं, मुझे इस पूरी जिन्दगी से नफरत है, मैं नहीं चाहती, यह गरम सांसों से भरे कमरे में बंद जिन्दगी । सिफारिशों से पाई होनहारी और सिफारिशों के बल पर होती तरक्की ।"[2]

"उत्तर-उर्वशी" (हमीदुल्ला) की मोना पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित स्वतंत्र विचारों की युवती है । वह प्रकाशक की पत्नी है, लेकिन लेखक को देखकर उसके प्रति वासनात्मक विचार रखती है । "खुजराहो का शिल्पी" (शंकर शेष) नाटक की नायिका राजकुमारी अलका स्वतंत्र व्यक्तित्व व विचारों की पोषक है । वह शिल्पी से प्यार करती है और उसे पाने के लिए समाज, उसकी मर्यादा तथा बन्धनों को तोड़ने को तत्पर रहती है । इस प्रकार नारी की व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना ने सदियों से चले जा रहे आचार-विचार,नैतिक बन्धनों व सामाजिक मूल्यों को नकारा है । प्रेम, त्याग, आदर्श, भलाई, ईमानदारी आदि के मूल्य धूमिल पड़ते जा रहे हैं । "आधे-अधूरे" नाटक में चित्रित परिवार को छिन्न-भिन्न करने में जितना

1- रातरानी - डा0 लक्ष्मी नारायण लाल -पृ0-38
2- एक और अजनबी - मृदुला गर्ग - नटरंग अंक -19,पृ0-11

हाथ आर्थिक संकट का है उतना ही वैयक्तिक स्वतंत्रता का । सावित्री पति से असन्तुष्ट होकर कई पुरूषों से सम्पर्क स्थापित करती है ।उसकी पुत्री बिन्नी अपने माँ के प्रेमी के साथ भाग जाती है । "लहरों के राजहंस" §मोहन राकेश§ की सुन्दरी अत्यधिक आत्मविश्वास तथा व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की भावना से सम्पन्न है । वह अपने रूपाकर्षण में नन्द को उलझाये रखना चाहती है ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि नारी स्वतंत्रता की भावना ने पारिवारिक दायित्वों, परस्पर प्रेम भाव, परोपकार,सद्भावना जैसे मूल्यों पर प्रश्न चिन्ह लगा दिये हैं । साथ ही साथ नैतिक संबंधों को विघटन के कगार पर ला खड़ा किया है । आज नारी घर की चार दीवारी के सीमित दायरे से निकल कर विस्तृत क्षेत्र में निकल आई है । समकालीन जीवन में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव तीव्रतर होता जा रहा है और नारी स्वतंत्रता भी इस सभ्यता से प्रभावित हुए बिना न रह सकी । उसकी इस प्रवृत्ति ने स्वच्छंदता को बढ़ावा दिया है ।

स्वच्छंद यौन चेतना :

पूर्व पृष्ठों में संकेत दिया जा चुका है कि समकालीन परिवेश में स्वच्छंदता तथा यौन उन्मुक्तता की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है । अँग्रेज़ों के सम्पर्क में आने से भारतीय परम्परागत चिन्तन में एक मुख्य परिवर्तन आया-वह था आध्यात्मिकता से कटकर भौतिकता की ओर उन्मुख होना और भारतीय समाज इस प्रवृत्ति की ओर निरन्तर अग्रसर होता जा रहा है । इसलिए आधुनिक व्यक्ति नैतिक व धार्मिक

मूल्यों से विमुख होता जा रहा है और असन्तोष ,आपाधापी, स्वार्थता तथा धन लोलुपता आदि प्रवृत्तियों को अपनाता जा रहा है । उसकी इस मन:स्थिति ने स्वच्छंद यौन वृत्ति को विकसित किया है । आधुनिक भीषण परिस्थितियों ने पारिवारिक जीवन को स्नेह व प्रेम से वंचित कर दिया है । पति-पत्नी के मधुर सम्बन्धों को शुष्क बना दिया है । अत: घर से अपमानित, त्रस्त व अजनबीपना आधुनिक व्यक्ति किसी "तीसरे व्यक्ति" या अन्य किसी घर की तलाश में भटक रहा है और नैतिकता, पवित्रता तथा आचारों-विचारों को त्याग रहा है । द्रौपदी, सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक ‖सुरेन्द्र वर्मा‖ आधे-अधूरे ‖मोहन राकेश‖ एक और अजनबी ‖मृदुला गर्ग‖ सादर आपका ‖दया प्रकाश सिन्हा‖ नरमेध ‖गिरीराज किशोर‖ अपनी पहचान ‖सुदर्शन चोपड़ा‖ आदि नाटकों में आधुनिक परिवेश की असंगतियों, विसंगतियों तथा जटिलताओं से टूटे और स्वच्छंद यौन वृत्ति में सुख को खोजते स्त्री-पुरूष का चित्रण किया गया है ।

नारी की आत्मनिर्भरता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भावना तथा पाश्चात्य प्रभाव से विकसित "भौतिक चेतना" ने भी इस प्रवृत्ति को बढ़ाने में "घी" का काम किया है । शिक्षा तथा संवैधानिक अधिकारों का आलम्बन पाकर नारी ऊंचाईयों पर चढ़ती जा रही है, लेकिन कहीं कहीं मार्ग में आ रही खाईयों को भी प्रगति का अंश्य मानकर स्वेच्छा से प्रवेश कर रही है । स्वच्छंदता को स्वतंत्रता का पयार्य समझ रही है और नैतिक मूल्यों को तोड़ रही है । आज वह सफलता प्राप्त करने, पुरूष के समकक्ष आने के लिए अपने शरीर को साधन बना रही है । "सादर आपका" की लज्जावती स्वंय कहती है -"मुझे एम0ए0 करने के पन्द्रह दिन के भीतर नौकरी मिल गई थी, तुझे महीने हो गये ।" और

प्रत्युत्तर में उसकी बेटी लज्जावती की असलियत को उद्घाटित करती है -"औरत क्या नहीं कर सकती वह तुम्हारी तरह नौकरी पा सकती है,प्रमोशन पा सकती है ।"[1] "वामाचार" ⁅रमेश बक्षी⁆ में "मिस पद्मा नौकरी प्राप्त करने के लिए शरीर को माध्यम बनाती है -" सरासर - तीन बार आपके साथ सिनेमा देखने जाना पड़ा था और दो बार आपके बिस्तर पर रात बितानी पड़ी थी । तब कहीं जाकर नौकरी हासिल हुई है --"[2] अद्यतन समाज में पति-पत्नी अन्य अनेक व्यक्तियों के साथ स्थापित किये गये सम्बन्धों को प्रगतिशीलता का लक्षण मान रहा है । व्यापक मनोवृत्ति का परिचायक घोषित कर रहा है । इसलिए पति-पत्नी के बीच जो एकाधिकार, अपनत्व की भावना थी,वह तिरोहित होती जा रही है । पति स्वंय पत्नी को उकसाता है कि वह तीसरे व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित कर पतिव्रता का प्रमाण दे । "उत्तर-उर्वशी" ⁅हमीदुल्लाह⁆ नाटक में मोना, उसके पति प्रकाशक के माध्यम से इसी तथ्य को उजागर किया गया है । प्रकाशक अपनीपत्नी मोना को लेखक के पास ले जाता है जिससे उसे अर्थ लाभ हो - प्रकाशक-⁅अ0⁆-"तू ही क्यों नहीं फांस लेती इसे ?पैसे की क्या जरूरत है ? तू यहां क्या करने आयी है साली कुतिया ।"[3] " एक और अजनबी" में शानी का पति जगमोहन जब अपने व्यक्तित्व के माध्यम से प्रमोशन नहीं पा सका तो, शानी को तैयार करता है क्योंकि उसे ज्ञात हो जाता है कि उसका बॉस उसकी पत्नी का प्रेमी

1- सादर आपका - दया प्रकाश सिन्हा - पृ0-72

2- वामाचार - रमेश बक्षी - पृ0-38

3- उत्तर- उर्वशी - हमीदुल्लाह - पृ0 47

रह चुका है । इसलिए जगमोहन अपने बॉस इन्दर को "डिनर" पर आमन्त्रित करता है और दोनों को एकांत में छोड़ने के उद्देश्य से कहीं बाहर चला जाता है ।"[1] आधुनिक परिवेश में पति-पत्नी तीसरे व्यक्ति को सहजता से स्वीकार रहे हैं । "उत्तर-उर्वशी" में पति-पत्नी के संवाद इस तथ्य की पुष्टि कर रहे हैं -

स्त्री एक -" शाहजहां की कोई बात मैं भूल नहीं पाती । यति ~~अ~~ नहीं आया ।

पुरूष एक - तुम भूल नहीं पाती ।

स्त्री एक - उसे आना चाहिये ।

पु0 एक - देर हो रही होगी ? तुम चलो । वह यहां आया तो भेज दूंगा मैं ।"[2] आज के जीवन की यह विडम्बना है कि पति-पत्नी दोनों एक दूसरे की असलियत जानते हुए भी सब कुछ भोगने पर विवश हैं । स्वच्छंद यौन वृत्ति आधुनिक व्यक्ति की दिनचर्या में सम्मिलित हो गई है । -"स्त्री एक - ये सब तो आदत बन गई है अब । झूठ बोलकर घर से निकलना ।

पु0 एक - बाहर कार में बैठकर इन्तजार करना ।

स्त्री एक - क्लब में जाकर शराब पीना ।

पु0 एक - डान्स करना

स्त्री एक - होटल के कमरे का नर्म बिस्तर ।

पु0 एक - वही सब एक बार फिर ।"[3]

"आधे- अधूरे" नाटक में नाटक कार मोहन राकेश ने यौनजनित

1- एक और अजनबी - मृदुला गर्ग - नटरंग -अंक 19 -पृ0 27-28

2- उत्तर उर्वशी - हमीदुल्लाह - पृ0-55

3 - उत्तर उर्वशी- हमीदुल्लाह -पृ0 -57

कुंठा को बखूबी उभारा है । महेन्द्रनाथ लिजलिजे आत्मविश्वासहीन व्यक्तित्व का स्वामी है । उसकी पत्नी सावित्री उससे असन्तुष्ट है और सैक्स की अतृप्त भावनाओं को तृप्त करने के लिए पर-पुरूषों का सहारा लेती है । सावित्री का प्रेमी उसकी बेटी को ले भागता है । छोटी लड़की किन्नी बाल्यावस्था में ही यौन संबंधी जानकारी हासिल कर रही है तो लड़का अशोक फिल्मी अभिनेत्रियों की तस्वीरें काटकर और अ श्लील पुस्तकों में यौन तृप्ति खोजता रहता है । इस प्रकार काम कुण्ठा से खण्डित, विश्रृंखलित परिवार, एक दूसरे से अजनबी, त्रस्त, प्रेमशून्य व्यक्तियों की स्थली बन कर रह गया है । "द्रौपदी" ॥सुरेन्द्र वर्मा॥ नाटक में उच्छृंखल सैक्स के धरातल पर भाई-बहन, पति-पत्नि, मां-बेटी और पिता-बेटी के बदलते दृष्टिकोण चित्रित किये हैं । परिवार के सदस्यों के बीच मर्यादा, अपनत्व व सौहार्द जैसा कोई भाव नहीं रह गयें हैं ॥ रह गये हैं केवल अशिष्ट, अमर्यादित संबंध । अनिल अपनी बहन अलका की वास्तविकता बताते हुए कहता है -"जरा इसका पर्स खोल कर देखो । रिट्ज के बाक्स की दो टिकटें हैं दोपहर के शो की । वहीं हैं इसकी किलास-सोशियोलौजी नहीं ,सैक्सोलौजी की +।"[1] इस परिवार में पिता-पुत्री के अत्यंत पवित्र संबंध कामवृत्ति से कुंठित हो रहे हैं । पिता पुत्री के स्वच्छंद आचरण को देखकर कहता है -"छह महीनों में सिर्फ ब्लाऊज़ के बटनों तक पहुंच सका ।

सुरेखा -॥बौखलाकर॥ तुम्हें शर्म नहीं आती ? इस तरह बोलते हो अपनी बेटी के लिए ।

मन मोहन - ॥मुग्ध दृष्टि से उधर देखता है ॥खोया सा॥ वो मेरी बेटी नहीं है ।"[2]

1- द्रौपदी - सुरेन्द्र वर्मा - पृ0 10 ॥नटरंग अंक-14॥

2- द्रौपदी -सुरेन्द्र वर्मा -पृ0 12 -नटरंग-अंक-14

आधुनिक नारी शारीरिक सुख के आधार पर पति,वैवाहिक सम्बन्ध व मर्यादा, आदर्श आदि को नकार रही है । वह पति की, शारीरिक व मानसिक कमजोरियों को "भाग्य" कह कर स्वीकार नहीं करती, अपितु शारीरिक इच्छा को स्वाभाविक ,प्राकृतिक अधिकार घोषित कर "अन्य" के साथ सम्पर्क स्थापित कर लेती है । "सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक" नाटक में शीलवती के माध्यम से इसी आधुनिक तथ्य को उद्घाटित किया गया है । रानी शीलवती नपुंसक पति राजा ओक्काक से राज्य का उत्तराधिकारी प्राप्त न कर सकने के कारण अमात्य परिषद द्वारा एक रात के लिए उप-पति चुनने को विवश की जाती है । उप-पति के रूप में बाल सखा प्रतोष का चुनाव कर शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करती है और उस एक रात के पश्चात् सामाजिक मर्यादाओं, मान्यताओं, आदर्श व वैवाहिक सम्बन्ध पर प्रश्न चिन्ह लगाती है, शारीरिक सुख के समक्ष उन्हें महत्वहीन घोषित कर देती है ----"निभाई है मैंने ---- और पांच वर्ष तक मर्यादा निभाने में उतना संतोष नहीं मिला, जितनी तृप्ति एक रात में मिली है ------ बोलो ---- किसे मानूं ? किसको दूं महत्व ?"[1] उस एक रात के पश्चात् शीलवती का जीवन दर्शन व्यक्तिगत सुखों की खोज व स्वच्छंद यौन चेतना पर आधारित हो जाता है । फायडवादी मनोवृत्ति से प्रभावित वैयक्तिक-चेतना पर आधारित यौन सम्बन्धों को आधुनिक व्यक्ति - आवश्यकता कहकर स्वीकार रहा है । वामाचार §रमेश बक्षी§ नाटक में इस प्रवृत्ति को उद्घाटित किया गया है । नाटक में "पाज़िटिव" किसी के भी स्थापित शारीरिक सम्बन्धों को बिलकुल सहज व स्वाभाविक मानता है ---"क्या है गलत ? यह मैक्सी गलत है । खुले बाल गलत हैं । मेरे सफेद कपड़े गलत हैं । यदि ये गलत नहीं हैं तो

1- सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक - सुरेन्द्र वर्मा पृ0-49

तुम्हारा मेरे बिस्तर पर लेटना भी गलत नहीं है ।---[1] "देवयानी" का कहना है "§रमेश बक्षी§ नाटक में स्त्री की बदलती मन:स्थितियों मान्यताओं का चित्रण करता है । देवयानी व्यक्तिगत स्वतंत्रता व सैक्स के आधार पर अनेक पुरूषों के सम्पर्क में आती है । उसका सिद्धान्त है - "वन एपल इस नाट इन अफ फार दि छोल आव द लाइफ बटेस्ट मोर ।"[2]

महानगरीय आवास समस्या ने भी उन्मुक्त यौन प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है । परिवार एक कमरे में सिमट आये हैं - जिनमें बाल,वृद्ध, जवान सभी ठुंसे हुए हैं । पति-पत्नी के जो सम्बन्ध एकान्त प्रिय होते थे आज बेनकाब हो गये हैं । "घरौंदा" नाटक में छाया अपनी पारिवारिक स्थिति को उद्घाटित करती है -""------ तुम नहीं जानते , सुदीप , जब कभी रात को नींद खुल जाती है तो मेरा शराबी भाई मेरी भाभी के साथ ----- उफ ------- वह छीना-झपटी । रोंगटे खड़े हो जाते हैं मेरे ।"[3] "चारपाई" नाटक में नाटककार ने आवासीय समस्या से झुंझलाते, कुंठित हुए यौन सम्बन्धों का चित्रण किया है । इस प्रकार नाटक कार आवासी तथा आर्थिक समस्या से संघर्षरत , अपने को अकेला असुरक्षित व अजनबी अनुभव कर रहे ऐसे व्यक्ति को अभिव्यक्त दे रहे हैं जो अपने तनाव को कम करने के लिए शारीरिक सुख की ओर अग्रसर हो रहा है ,जिसके समक्ष ऊंच-नीच ,जात-पात के भेद नष्ट हो रहे हैं । डा० लाल के नाटक "कजरी बन" में इस तथ्य को सफलता से उभारा गया है । निम्न जाति की "कजरी" से उच्च जाति के लोग भेद-भाव तो बरतते हैं किन्तु शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने में में कोई हिचक नहीं । ऊंच जात वालों के पाखण्डों का पर्दाफाश करती हुई कजरी कहती है -"गांव वाले लोगों को बताते- यह नीची

1- वामाचार - रमेश बक्षी - पृ० 19

2- देवयानी का कहना है - रमेश बक्षी - पृ० 72

3- घरौंदा - शंकर शेष -पृ० 18

जाति की है, अछूत है । जो ऐसा कहते, वे ही चुपचाप मेरे हाथ की चाय पी जाते । एक दिन शाम को इसका मर्द, इसका बेटा, इसका पति ---- सबने मुझे घेर लिया ।"[1] इसी प्रकार निम्न वर्ग की शेफाली भी उच्च वर्ग के बकुल से शारीरिक सम्बन्ध बनाये रखती है ।"[2]

आधुनिक भ्रष्ट राजनीतिक परिवेश से कुंठित, स्वार्थी मनोवृत्ति से विकृत "वैयक्तिक-चेतना" ने भी स्वच्छंद यौन चेतना को उग्रतर किया है । "मरजीवा" ﴾मुद्राराक्षस﴿ सुनो शेफाली ﴾डा0कुसुम कुमार﴿ दरिन्दे ﴾हमीदुल्लाह﴿ आदि नाटक इस तथ्य की पुष्टि करने में समर्थ हैं । "मरजीवा" नाटक में शिवाज गंजे मिनिस्टर बेरोज़गार तथा आर्थिक रूप से दुखी भूमि को नौकरी का लालच दे कर उसका शरीर खरीदना चाहता है । इसप्रकार राजनैतिक हथकंडों में प्रश्रय ले रही "वैयक्तिक चेतना" ने इस प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है ।

जैसाकि संकेत दिया जा चुका है कि समकालीन युग अनेक विसंगतियों और विद्रूपताओं से व्याप्त है ,और आज का व्यक्ति इनकेबीच फंसा इनसे संघर्षरत है , इस युद्ध में कभी उसे विजय मिल रही है तो कभी पराजय का मुंह देखना पड़ रहा है । इस पराजित मनोवृत्ति को झेलने के लिए वह नशीली, दवाइयों, डिस्को संस्कृति तथा उन्मुक्त शारीरिक सुख की ओर उन्मुख हो गया है । "युवा वर्ग इस प्रवृत्ति से अत्याधिक प्रभावित होता दृष्टिगोचर हो रहा है । उसकी "चेतना" पर पाश्चात्य सभ्यता का ऐसा रंग चढ़ रहा

1- कजरीबन - डा0 लक्ष्मी नारायण लाल - पृ0-41

2- सुनो शेफाली- डा0 कुसुम कुमार - पृ0-59

है जिससे उसे पश्चिमी रंग-ढंग, माहौल और विचार- उचित नज़र आ रहे हैं और भारतीय सभ्यता व संस्कृति को पिछड़ेपन का लक्षण मान रहा है । "ओह अमेरिका" नाटक में नाटककार ने व्यंग्य के माध्यम से इस समस्या को चित्रित किया है। श्याम लाल जो स्वंय पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति से प्रभावित होकर भारतीयता को तुच्छ समझता था लेकिन उसकी सन्तान उससे भी दो कदम आगे बढ़कर घर की मान मर्यादा व इज्जत को ताक में रख कर नशीली वस्तुओं का सेवन कर स्वच्छंद यौनाचार करती है । समीर अपने पिता श्याम से कहता है - "मॉड सोसायटी परीमसिव सोसायटी होती है । वहां सैक्स पर कोई बंधन नहीं होता ।"[1] इस प्रकार पाश्चात्य के अंधानुकरण ने स्वच्छंद यौन वृत्ति को प्रभावित किया है । इन नाटकों के अतिरिक्त तिलचट्टा, तेन्दुआ, करफ्यू, सेतुबन्ध आदि अन्य नाटकों में भी स्त्री पुरूष के बीच उन्मुक्त यौन चेतना को सफलता के साथ चित्रित किया है । इन नाटकों में व्यक्ति की काम जीनत कुंठाओं ,यौन पीड़ित मन:स्थितियों आदि का चित्रण मनोवैज्ञानिक आधार पर किया गया है । आधुनिक परिवेश में स्वाच्छंद यौन वृत्ति के कारण पति-पत्नी प्रेमी-प्रेमिका तथा परिवार के अन्य सदस्यों के बीच उत्पन्न ,विघटन अलगाव, तनाव तथा अन्य अनेक स्थितियों का भी चित्रण किया गया है । यौन कुंठा की मन:स्थिति में व्यक्ति अपने अनुरूप धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों की व्याख्या कर रहा है तथा उनके नये मापदण्ड स्थापित कर रहा है । ,उन्हें नये चिन्तन से जोड़ रहा है ।

नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों में बिखराव की स्थिति :-

पूर्ववर्ती पृष्ठों में विवेचन किया जा चुका है कि साठोत्तरकालीन

1- ओह अमेरिका - दयाप्रकाश सिन्हा - पृ0-97

परिस्थितियों में तीव्रतर होती अति वैयक्तिक, बौद्धिकता, यौन चेतना, भौतिकता, औद्योगीकरण तथा वैज्ञानिकता को आत्मसात् करती हुए "वैयक्तिक चेतना" नैतिक व धार्मिक मूल्यों को विघटन के कगार पर ला खड़ा किया है । सन् साठ से पूर्व के समाज में मानव मूल्यों, आदर्शों व नैतिकता के प्रति झुकाव बना हुआ था, विश्वास था, यद्यपि नैतिकता के इस वट वृक्ष की टहनियाँ परिस्थितिवश सूखने लगी थीं, लेकिन आज की विषम जटिलताओं इस वृक्ष को जड़ से हिलाकर पीला कर दिया है, पतझड़ का ठूंठ वृक्ष बना दिया है । समसामयिक युग की वैचारिक आँधी से कहीं कहीं इस वट वृक्ष से पीले, सड़े पत्ते झड़े हैं तो साथ ही स्वस्थ, हरियाली प्रदान करने वाले, समाज को शीतल छाया प्रदान करने वाले पत्ते भी झड़ रहे हैं और आज का मनोविश्लेषण वादी साहित्य कार टूटती नैतिकता तथा खण्डित धार्मिकता का चित्रण अपने नाटकों में कर रहा है, समाज की सही तस्वीर प्रस्तुत कर रहा है । उत्तर-उर्वशी (हमीदुल्लाह) देवयानी का कहना है (रमेश बक्षी) सादर आपका (दया प्रकाश सिन्हा) वाह रे इन्सान (रमेश मेहता) दरिन्दे (हमीदुल्लाह) कुत्ते (सुरेश चन्द्र शुक्ल "शुक्ल") ओह अमेरिका (दया प्रकाश सिन्हा) तेन्दुआ (मुद्रा राक्षस) वामाचार, तीसरा हाथी (रमेश बक्षी) करफ्यू, व्यक्तिगत (डा० लक्ष्मी नारायण लाल) चिराग की लौ (रेवती सरन शर्मा) कुहासा और किरण (विष्णु प्रभाकर) द्रौपदी (सुरेन्द्र वर्मा) आधे-अधूरे (मोहन राकेश) आदि कई नाटकों में पाश्चात्य चिन्तन, अति बौद्धिकता तथा आर्थिक विषमता के धरातल पर आधारित "वैयक्तिक चेतना" से प्रभावित खण्डित-मण्डित होती नैतिक व धार्मिक मान्यताओं को उद्घाटित किया गया है ।

शिक्षा के प्रचार-प्रयार और बौद्धिकता के आलोक से दीप्त "वैयक्तिक चेतना" ने नैतिकता तथा धर्म के प्रति नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है, जिसके परिपेक्ष्य में पाप-पुण्य आदि की व्याख्या बदल रही है । "पीली दोपहर" में डा0 सुधांशु अपनी पत्नी को समझाते हुए कहता है -"पूर्व जन्म के पाप । पाप-वाप क्या होता है । सब फिजूल की बातें हैं ।"[1] आधुनिक बुद्धि तर्क के आधार पर ईश्वर व उसकी सत्ता को काल्पनिक मान रहा है । "न धर्म न इमान" में दिनेश "ईश्वर" को मनुष्य से गौण मानता है -" हाँ क्योंकि मैं भगवान के दोषों को इन्सान के सिर नहीं मढ़ता और इन्सान की खूबियों का ताज उठाकर भगवान के सिर नहीं रखता । राम दयाल जी, अव्वल तो भगवान है नहीं , और अगर है तो हमारी तमाम मजबूरियों और बदनसीबियों का जिम्मेदार है । इसलिए उसके आसरे न रहिये ।"[2] इसी प्रकार राजेन्द्र शर्मा के नाटक "काया कल्प" में समाज के ठेकेदार धर्माचार्यों ,पंडितों आदि आडम्बरों व षड्यन्त्रों के प्रति विद्रोह को अभिव्यक्त किया है । "कबिरा खड़ा बाजार" में नाटक में प्राचीनकाल से चले आ रहे बाह्याडम्बरों और अंधविश्वासों का पर्दाफाश किया है । इसप्रकार आधुनिक शिक्षा, बौद्धिकता तथा वैज्ञानिक परिवेश ने नैतिक व धार्मिक मूल्यों को जड़ीभूत बनाने वाले अंधविश्वासों, बाह्याडम्बरों आदि को दूर कर इनके स्वच्छ स्वरूप को उभारा है । लेकिन इन मूल्यों का एक पक्ष ऐसा भी है जो परिस्थितियोवश अपने सत्यं,शिवं तथा सुन्दरं रूप को त्यागता जा रहा है । नैतिक व धार्मिक मूल्यों के इस पक्ष

1- पीली दोपहर - जगदीश चतुर्वेदी - पृ0-10

2- न धर्म न ईमान - रेवती सरन शर्मा - पृ0-50

को "अर्थ" तथा "काम" पर आधारित भौतिक वादी वैयक्तिक चेतना ने सर्वाधिक प्रभावित किया है । "चिराग की लौ" (रेवती सरन शर्मा) के तारा, रानी, जयन्त और गिरीश ऐसे ही पात्र हैं जो अर्थ तथा "भौतिकता के समक्ष आदर्श व नैतिकता को नकारते हैं । गिरीश जो कमीशन एजेण्ट है वह धन की थैलियों में सरकारी अफसरों को खरीदता है । वह ईमानदारी को एक रोग की संज्ञा देता है- "(गम्भीर होकर) ईमानदारी और खूबी ।----- तारा देवी,यही तो एक बीमारी है जो बढ़े हुए टॉसिल्स की तरह इन्सान को न जीने देती है ,न मरने । इससे जितनी जल्दी छुटकारा मिल जाये, अच्छा है ।"[1] इसी प्रकार "अत: किम्" नाटक में तस्कर नरेन "अर्थ" के आधार पर देशप्रेम, आदर्श ,संस्कार , ईमानदारी ,प्रेम आदि के आचारों-विचारों को झुठलाता है । वह अपनी भाभी रत्ना से कहता है -"बेइमानी, झूठ, धोखेबाजी खराब चीज़ें नहीं हैं अगर तो उनसे ज्यादा बुरी चीज़ें हैं सच्चाई और ईमानदारी । ये जिन्दगी के बहाव को रोकती हैं पकड़कर बांधती है ।"[2]

आधुनिक परिवेश गत "आर्थिक संकट" तथा भौतिकता के प्रति तीव्र होते आकर्षण ने "नारी" को भी अर्थोपार्जन के लिये विवश और ललायित किया है । आधुनिक, शिक्षित नारी आत्मनिर्भरता को स्वतंत्रता स्वअस्तित्व की रक्षा के लिए अनिवार्य कदम मान बैठी है । नैतिकता तथा मर्यादा उसे अब विकास मार्ग में बेड़ियों के समान प्रतीत हो रही है । इसलिए अपने "करियर" तथा "पोस्ट" के समक्ष शील,चरित्र सतीत्व जैसे नैतिक मूल्यों को नगण्य मान रही है । "वामाचार"

1- चिराग की लौ - रेवती सरन शर्मा - पृ0-44

2- अत: किम् - राधाकृष्ण सहाय - पृ0-36

(रमेश बक्षी) की मिस पदमा तथा "सादर आपका" (दया प्रकाश सिन्हा) की लज्जावती बौद्धिकता से प्रभावित आधुनिक पीढ़ी नैतिक मान्यताओं तथा धार्मिक विश्वासों को त्यजनीय मान रही है । "उत्तर-उर्वशी की मोना शारीरिक सुन्दरता के आधार पर लेखक की ओर आकर्षित होती है जबकि वह प्रकाशक की पत्नी है -"इसकी तो अभी शादी ही नहीं हुई । फांस ले इसे । बात कर ।"[1] और -"अबे मुरदाद, इस वक्त पेंटिंग्स में किसे दिलचस्पी है ? चाहिये सिर्फ एकान्त ।"[2] इस प्रकार खण्डित होते नैतिक मूल्यों ने पारिवारिक मधुर सम्बन्धों , अगाध विश्वास तथा सौहार्द्र जैसे मूल्यों को व्यापक रूप से प्रभावित किया है ।

आज के महानगरों में आर्थिक दबाव और आवास समस्या ने व्यक्ति को आन्तरिक व बाह्य रूप से खोखला कर दिया है । नैतिकता उनके लिए बोझ बन गई है । "घरौंदा" में सुदीप अपनी प्रेमिका छाया को मृत्यु का इन्तजार कर रहे मिल मालिक मोदी के साथ विवाह करने को बाध्य करता है, जिससे उन्हें घर व धन मिल सके जिसका वे मोदी की मृत्यु उपरान्त उपभोग कर सकें । सुदीप कहता है -"भावना को ताक पर रखकर , संस्कारों का बोझ उतार कर और नैतिकता के माथे पर लात मार कर हर काम सावधानी से करना है ।"[3] इस आवास समस्या ने व्यक्ति को अत्यधिक स्वार्थी बना दिया है । व्यक्ति न तो व्यक्ति के प्रति संवेदनशील है और न ही अपने कर्तव्य के प्रति । "चारपाई" नाटक में इसी समस्या से संघर्षरत, थकित परिवार का चित्रण किया है जिसमें पारिवारिक स्नेहभाव का वृक्ष सूखकर ठूंठ

1- उत्तर उर्वशी - हमीदुल्लाह - पृ0-45

2- उत्तर उर्वशी - हमीदुल्लाह -पृ0-48

3- घरौंदा -डा0 शंकर शेष - पृ0-57

बन गया है और पारिवारिक मूल्य, नाटक में उपस्थित गन्दे कपड़े के गठ्ठर के समान रह गये हैं।

समकालीन परिवेश राजनीति से आच्छादित है। आधुनिक भ्रष्ट राजनीति ने "वैयक्तिक चेतना" को व्यक्तिवादी के स्वार्थी घेरे सीमित कर दिया है। प्राचीनकाल से चले आ रहे आदर्श, नैतिक मूल्य, भारत की-आपाधापी तथा स्वार्थपूर्ण राजनीति में धूमिल पड़ रहे हैं। तू-तू, नाटक में शराबी, नेता के प्रतीक रूप चाचा से कहता है -"मगर लोग कहते हैं कि मर्जी खुदा की होती है।

चाचा - आजकल के जमाने में नहीं, पुराने जमाने में होगी। सब काम भगवान नहीं करते, कुछ काम ऐसे हैं जिन्हें आदमी शक्ति और सामर्थ्य से करता है और जिन पर लोग आश्चर्य करते हैं।"1

मुद्राराक्षस केनाटक "मरजीवा" में भ्रष्ट राजनीति में लिप्त शिवपाल गंजि विरोधी दल को बदनाम करने से उददेश्य से "आदर्श" को जिंदा जलवा देते हैं। इसी प्रकार "राम की लड़ाई" में कुछ भ्रष्ट नेता विमला के पिता की हत्या कर देते हैं। इस प्रकार भ्रष्ट, स्वार्थपूर्ण राजनीति में प्रेम, त्याग, सौहार्द्र, परोपकार ,देश सेवा व कर्तव्य भावना जैसे नैतिक मूल्य दम तोड़ रहे हैं। दरिन्दे, "हमीदुल्लाह} मिस्टर अभिमन्यु {डा0 लक्ष्मी नारायण लाल} एक था गधा उर्फ अलादाद खाँ {शरद जोशी} सम्भावामि युगे-युगे {ज़ि0जे0हरिजोत} शुतुरमुर्ग {ज्ञान देव अग्निहोत्री} सिंहासन खाली है { सुशील कुमार सिंह} बकरी {सर्वेश्वर दयाल सक्सेना} आदि नाटकों में परिवेशगत राजनैतिक परिस्थितियों से विकसित होती

1- तू-तू - आस्थानन्द सदासिंह - पृ0 21

स्वार्थपूर्ण, सत्ता में लिप्त, "वैयक्तिक चेतना" ने धार्मिक व नैतिक मूल्यों को क्षत-विक्षत कर दिया है। इसलिए समकालीन व्यक्ति कह उठा है -"धर्म आडम्बर, रूढ़ि, अवतारवाद,ढकोसला,पोंगापंथी, जड़वाद ।"[1]

आज उसकी ईश्वर के प्रति आस्था बिखर रही है। वह समस्त बुराइयों की जड़ ईश्वर को मान रहा है - "व्यंग्य से) ईश्वर। इस उजले खोखले शब्द ने मनु के बेटों के बीच सदियों के काटे बो दिये हैं।"[2]

अतः स्पष्ट हो जाता है कि साठोत्तरी नाटक समसामयिक आर्थिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक परिस्थितियों के धरातल पर संकीर्ण होती "वैयक्तिक चेतना" से खण्ड-खण्ड हो बिखरते धार्मिक-नैतिक मूल्यों की सही तस्वीर पेश कर रहे हैं। इन मूल्यों के प्रति बदलते प्रतिमानों को चित्रित कर रहे हैं, इनकी ह्रासात्मक स्थिति को उद्घाटित कर रहे हैं। समकालीन समाज में जब धार्मिकता और नैतिकता पर प्रश्न वाचक चिन्ह लग गये हैं तो सामाजिक परम्परायें इस वातावरण से अछूती कैसे रह सकती हैं। इसलिए आज इन सामाजिक परम्पराओं के प्रति विद्रोह के स्वर दबे-घुटे से फूट रहे हैं।

सामाजिक परम्पराओं के प्रति नये स्वर :-

पूर्ववर्ती अध्यायों में यह लक्ष्य किया जा चुका है कि विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलनों ने मध्यकालीन रूढ़ परम्पराओं को परिष्कृत करते हुए उन्हें युगानुरूप चेतना से जोड़ा। इससे परम्पराओं के प्रति नये चिन्तन व दृष्टिकोण पनपने लगे। स्वातंत्र्योत्तर समाज

1- उत्तर उर्वशी - हमीदुल्लाह - पृ0-26

2- उत्तर उर्वशी - हमीदुल्लाह - पृ0-36

का व्यक्ति अपने विकास में बाधास्वरूप मान इन परम्पराओं को अपने अनुरूप ढालने लगा। इस प्रकार समाज में नवीन चिन्तन तथा नये दृष्टिकोण विकसित हुये । लेकिन जैसाकि संकेत दिया जा चुका है आलोच्यकालीन समाज में अन्य अनेक समसामयिक परिस्थितियों के कारण "वैयक्तिक चेतना" व्यक्तिवादी चेतना के रूप में सामाजिक मूल्यों, आदर्शों को त्यागने लगी । परिणामत: अनेक सामाजिक परम्पराओं तथा मान्यताओं को संदेह की दृष्टि से देखा जाने लगा । सन् 60 से पूर्व के समाज में संयुक्त परिवार, माता-पिता की आज्ञा, विवाह तथा अन्य संस्कारों के प्रति स्वीकारात्मक भाव तथा विधवा-विवाह अन्तर्जातीय विवाह आदि के प्रति व्यावहारिक-स्तर पर जो नकारात्मक भाव थे, वे साठोत्तर समाज में परिवर्तित होने लगे । समकालीन राजनैतिक तथा संवैधानिक परिवेश ने भी सामाजिक मान्यताओं को बदलने में महत्वपूर्ण सहयोग दिया है । जैसाकि उल्लेख किया जा चुका है कि शिक्षा, वैज्ञानिकता, औद्योगीकरण, आर्थिक संकट, आवास समस्या और विदेशी सभ्यता के अंधानुकरण से प्रभावित "वैयक्तिक चेतना" ने सामाजिक परम्पराओं के प्रति विद्रोह की चेतना को तीव्रतर किया । युगीन आर्थिक संकट ने मंहगाई में पिस रहे, महानगरीय जीवन की समस्या से जूझ रहे व्यक्ति मन में असन्तोष व स्वार्थप्रवृत्ति को बल देकर सामाजिक, सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति मोह को कम कर दिया है । आलोच्य कालीन नाटकों में नाटककार, विवश, कुंठित द्वंद्वात्मक मन:स्थिति लिए व्यक्ति की उहापोह को सटीक अभिव्यक्ति प्रदान कर रहे हैं, उसकी सामाजिक परम्पराओं को त्यागने व अपनाने की प्रक्रिया को उद्घाटित कर रहे हैं । रात-रानी (डा० लाल) करफ्यू (डा० लाल) न धर्म न ईमान (रेवती सरन शर्मा) अत: किम्

(राधाकृष्ण सहाय) उत्तर-उर्वशी, (हमीदुल्लाह) ओह अमेरिका (दया प्रकाश सिन्हा) पीली दोपहर (जगदीश चतुर्वेदी) माटी जाग रे (ज्ञान देव अग्निहोत्री) द्रौपदी, सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक (सुरेन्द्र वर्मा) कुत्ते (सुरेश चन्द्र शुक्ल "चन्द्र") घरौंदा (शंकर शेष) आदि ऐसे प्रमुख नाटक हैं जो समसामयिक परिवेश में खंडित मंडित हो रही सामाजिक मान्यताओं को चित्रित कर रहे हैं। अतः किम् नाटक में ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ मनोहर घर का खर्च नहीं चला पाता। आर्थिक संकट के कारण उसकी सीमित आय से पत्नी बच्ची तथा उसके भाई की आवश्यकताओं की पूर्ति का निर्वाह नहीं हो पाता है ,जबकि उसका चचेरा भाई वीरेन् तस्करी द्वारा लाखों रुपये कमाता है, भोग विलास में लिप्त रहता है। इतना ही नहीं वह धन के बल पर सरकारी अफसरों की ईमानदारी तथा देश का कानून तक को खरीद कर अपनी मुट्ठी में रखता है। इस अव्यवस्था को देख मनोहर कुंठित और विद्रोही बन जाता है। उसे कर्तव्यनिष्ठता, ईमानदारी, संस्कार यहाँ तक कि ईश्वर के प्रति भी अनास्था उत्पन्न हो जाती है। विवश हो वह कह उठता है -"बहुत भरोसा किया। मिला क्या ? मिला ईश्वर के नाम पर पत्थर का टुकड़ा, मिली मिट्टी की मूर्ति, मिला दीवाल या कागज पर खींचा गया चित्र, एक पक्षी ,एक मछली, एक सांप ----- ईश्वर से बड़ा झूठ और नहीं रत्ना।"[1] आधुनिक युग में मध्यम वर्गीय व्यक्ति ही सर्वाधिक त्रासदी की जिन्दगी जी रहा है। एक ओर वह सामाजिक मान्यताओं व परम्पराओं से मुक्त

1- अतः किम् - राधाकृष्ण सहाय - पृ0-72

होना चाहता है, किन्तु दूसरी ओर उनके प्रति मोह भी बनाये हुए है । इस दोहरी मनःस्थिति को "उत्तर-उर्वशी" नाटक में पुरूष एक के माध्यम से अभिव्यक्त करता है -"------ और हम सब अंधेरे में रहकर, इसी में साँस लेकर , इसी में काम करते हुए रोशनी की बात करते हैं ।"[1] भौतिकता से प्रभावित "व्यैक्तिक चेतना" ने भी प्राचीन काल से चली आ रही परम्पराओं व मान्यताओं को नकार दिया है । व्यक्ति ने सदैव पारिवारिक सुख तथा वंशवृद्धि के लिए सन्तान की कामना की है । किन्तु आज व्यक्ति वैयक्तिक स्वच्छंदता से इतना जुड़ता जा रहा है कि सन्तान प्राप्ति उन्हें निरर्थक व बेकार का झंझट प्रतीत हो रही है । "सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक" नाटक की शीलवती विद्रोही बन कर सामाजिक परम्पराओं को नकारती है तथा सन्तान को "गौण उत्पादन"[2] तथा "तलहटी की छाछ"[3] समझती है । समकालीन परिवेश में पाश्चात्य अंधानुकरणीय प्रवृत्ति से भी सामाजिक मान्यताओं को झुठलाने की प्रवृत्ति तीव्र हुई है । "कुत्ते" नाटक में मि0 कपूर, राका से कहता है-"अब पुरानी परम्परायें टूटनी ही चाहिये । ------ यह भी कोई बात है कि जिससे शादी हुई, बस उसी से बँधे रह गये । ----- समय के साथ-साथ सब कुछ बदलते रहना चाहिये ।"[4] डा0 लाल का नाटक "करफ्यू" भी सामाजिक बन्धनों के लगे करफ्यू से व्यक्ति को मुक्त कर उसे सहज बनाने की प्रक्रिया से गुजरता है । इसके पात्र समाज द्वारा लगाये गये नैतिक बंधनों को तोड़ने

1- उत्तर-उर्वशी - हमीदुल्लाह - पृ0-34

2- सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक - सुरेन्द्र वर्मा पृ0-51

3- - वही -

4- कुत्ते - सुरेश चन्द्र शुक्ल "चन्द्र" पृ0-20

की कोशिश करते हैं । डा० दयाशंकर शुक्ल के शब्दों में -"संजय,कविता, गौतम और मनीषा ने समाज द्वारा आरोपित "करफ्यू" को तोड़कर नयी क्रान्तिकारी मान्यताएं स्थापित की हैं । ये मान्यताएं जीवन रहस्यों को खुली किताब की तरह समक्ष रख देती हैं ।"[1] समकालीन आधुनिक शिक्षा ने व्यक्ति को तर्कवादी तथा वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान की है । इसीलिए व्यक्ति प्रत्येक वस्तु को तथ्य के प्रमाण से परखना चाहता है । "ओह अमेरिका" नाटक में बुद्धि का प्रतीक विवेक नामक पात्र पंडित से कहता है -"अंग्रेज सात समुन्दर पार आ गये उनका धरम नहीं बिगड़ा । तुम्हारा धरम घर बैठे बिगड़ जाता है ?"[2] इसीप्रकार "न धर्म न ईमान" का पात्र दिनेश भी प्राचीन मान्यता को नकारता है हिन्दू समाज की प्रथा के अनुसार रिश्तों में परस्पर विवाह नहीं हो सकते ,किन्तु दिनेश इस प्रथा को गलत सिद्ध करते हुए कहता है :-"अगर शास्त्र नस्ल अच्छा बनाने की खातिर हो ऐसा कहते हैं तो फिर वे अपनी ही जात और अपने ही धर्म में शादी करने को क्यों कहते हैं । क्यों नहीं कहते दूसरी जातों, दूसरे धर्मों और दूसरी नस्लों में शादी करने को ? ताकि खून ज्यादा से ज्यादा बच सके ।"[3] शिक्षा तथा वैज्ञानिकता का प्रभाव अब न केवल शहर तक सीमित रह गया है वरन् गांव की उपजाऊ माटी में पड़कर इनके बीज, तीव्रता से पुष्पित ,पल्लिवत होकर वृक्ष का रूप धारण कर रहे हैं, जिनकी शीतल छाया में,कुरीतियों, कुप्रथाओं तथा विद्रूप मान्यताओं की तपिश से व्यथित हुआ ग्रामीण व्यक्ति भी राहत पा रहा है । "माटी जाग रे "(ज्ञानदेव अग्निहोत्री) कपास के फूल (जगदीश चतुर्वेदी) भूमि की ओर (सुरेश चन्द्र शुक्ल "चन्द्र") पहला विद्रोही (डा० विनय) आदि नाटकों में ग्रामीणजन में व्याप्त

1- लक्ष्मी नारायण लाल के नाटक और रंगमंच - डा०दयाशंकर शुक्ल -पृ०-122

2- ओह अमेरिका - दया प्रकाश सिन्हा - पृ०-81

3- न धर्म न ईमान - रेवतीसरन शर्मा - पृ०-16

नवीन चेतना तथा नये चिन्तन को अभिव्यक्त किया गया है ।

आधुनिक परिवेश में शिक्षित तथा आत्मनिर्भर नारी रूढ़ सामाजिक परम्पराओं एवं मान्यताओं को तोड़ रही है । कुछ समय पहले तक वैवध्य नारी के लिए सबसे बड़ा दुर्भाग्य व कलंक माना जाता था, लेकिन आधुनिक शिक्षिता नारी स्व-अस्तित्व तथा "वैयक्तिक चेतना" के धरातल पर इस भय से मुक्त होती जा रही है । "वामाचार" नाटक में "पत्नी" कहती है -"आखिर मर गया । शायद अच्छा ही हुआ । उसे मरना ही था । लेकिन दूसरी जिन्दगी शुरू करने से पहले इस तरह फिजूल विधवा होने के दुख से बाहर आना होगा ।"[1] स्वाभिमानी शीलवती, अमात्य परिषद् द्वारा बल पूर्वक धर्मनाटी बनाये जाने के अपमान से विद्रोह की ज्वाला से जल उठती है, जिसमें उसकी सामाजिक मान्यताएं, विश्वास तथा मर्यादा भस्मीभूत हो जाते हैं । समस्त आदर्शों व संयमित आचरणों को पुस्तकीय घोषित करके स्वतंत्र जीवन जीने की इच्छा रखती है ।"[2] शिक्षित, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नारी स्वेच्छा व स्वतंत्रता के समक्ष दाम्पत्य जीवन को तुच्छ मान रही है । उसे अन्य किसी के साथ भी समझौता करना या सिद्धान्तों को मानना अपनी बलि देने के समान प्रतीत हो रहा है । "दरिन्दे" नाटक की रति कहती है -"पति के शव के साथ सती हो जाना या अपनी इच्छा के खिलाफ किसी दूसरे की इच्छा पर चलना बलि है ।"[3]

1- वामाचार - रमेश बक्षी - पृ0 4।

2- सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक - सुरेन्द्र वर्मा - पृ0- 5।

3- दरिन्दे - हमीदुल्लाह - पृ0 34

अन्य अनेक अन्तर्बाह्य परिस्थितियों के कारण आधुनिक परिवेश इतनी तेजी से बदल रहा है कि पुरानी पीढ़ी उसके साथ दौड़ने में अपने को असमर्थ पा रही है, समकालीन परिवेश में अपने को अजनबी सा अनुभव कर रही है , लेकिन इसी परिवेश में जन्मी, पली सांस ले रही युवा पीढ़ी परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढाल कर युग के साथ चल रही है । यही कारण है कि समसामयिक समाज में इन दो पीढ़ियों के मध्य संघर्ष उग्र होता जा रहा है । पुरानी पीढ़ी जिन आदर्शों, संस्कारों और शिष्टाचार की मान्यताओं की अपेक्षा करती है,उन्हें युवा पीढ़ी के आचरणों में न पाकर आक्रोशित और व्यथित हो उठती है । "दरिन्दे" नाटक की "बूढ़ी" अपने मनका उबाल व्यक्त करते हुए कहती है -" का ? हे भगवान कइस कलजुग आय गवा है ? बेटा बाप से सिगरेट मांग के पिये लाग है । हमार तो कुछ समझ में नाहीं आवत ।"[1] "तीसरा हाथी" के पात्र विभा, सोहन और रोशन, जो युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं , अपने पिता की तानाशाही से त्रस्त होकर उसके प्रति उपेक्षा का भाव रखते हैं तथा पिता की मृत्यु होने पर "जश्न" मनाने की कल्पना करते हैं ।"[2]

बौद्धिकता तथा वैज्ञानिकता पर आधारित "वैयक्तिक चेतना" ने सामाजिक मान्यताओं को उपयोगिता से सम्पृक्त कर दिया है । उनको आज परम्परागत रूप से मिली विरासत के आधार पर नहीं अपितु तर्क के धरातल पर अपनाया जा रहा है । इस प्रवृत्ति की ओर निस्संदेह युवा पीढ़ी का अधिक झुकाव दृष्टिगोचर होता है ।

1- दरिन्दे - हमीदुल्लाह - पृ0- 9

2- तीसरा हाथी - रमेश बक्षी - पृ0-7।

"तीसरा हाथी" नाटक में सोहन कहता है -"यानि आप एक ढहती हुई जर्जर चीज को हमेशा ढोते रहना चाहते हैं और जब उसका कोई उपयोग नहीं है और ------ ।"1

महानगरीय जीवन की आपाधापी ,आर्थिक विषमता और आवास समस्या ने भी सामाजिक रीति-रिवाजों,मान्यताओं तथा परम्पराओं आदि को प्रभावित किया है । घरौंदा §शंकर शेष§ चारपाई §रामेश्वर§ आधे-अधूरे §मोहन राकेश§ पूर्ण विराम §वसन्त परिहार§ आदि कई नाटकों में इन्हीं समस्याओं से पराजित होती सामाजिक मान्यताओं का चित्रण किया गया है ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि सांस्कृतिक, सामाजिक आन्दोलनों के फलस्वरूप कुछ रूढ़ मान्यताओं एवं परम्पराओं को परिष्कृत करके उन्हें युगानुरूप बनाया गया ,कुछ समाज में अपने को अपमानिता अनुभव कर स्वंय तिरोहित होती गयीं, तो कुछ परिस्थितियों से जूझती हुई अपने स्वरूप को बनाये रखने का प्रयत्न कर रही हैं । आलोच्य कालीन समाज में उग्र होती "वैयक्तिक चेतना" के "यथार्थवादी" तथा "भौतिकवादी" रूप ने व्यक्ति स्वातंत्र्य भावना, स्वच्छंद यौन चेतना तथा भौतिकता आकर्षण आदि प्रवृत्तियों को विकसित किया, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति मन संकुचित होता गया ।

फलत: व्यक्ति व्यक्तिगत स्वार्थ के आधार पर सामाजिक मान्यताओं व परम्पराओं को तोड़ने लगा । सामाजिक मान-मर्यादा, परोपकार, बड़ो के प्रति आदर भाव ,विवाह तथा अन्य अनेक स्वस्थ सामाजिक मान्यताओं को भी तोड़ने लगा । स्वार्थ में लिप्त

1- तीसरा हाथी - रमेश बक्षी - पृ0 21

व्यक्ति पत्नी सन्तान, माता-पिता सबसे दूर होता जा रहा है । अजनबी बनता जा रहा है । दूसरे शब्दों में कहें तो वह मशीनों के बीच रह कर मशीन बनता जा रहा है । टूटती नैतिक व सामाजिक मान्यताओं से साठोत्तर समाज में अव्यवस्था फैलती जा रही है । व्यक्ति दिशाहीन होकर अपने अस्तित्व के लिए भटक रहा है । इस खोज में वह,टूटा,थका, उत्साह हीन, अनवरत संघर्षरत है । इस संघर्ष में पुरानी मान्यताओं पर प्रश्न चिन्ह लगा रहा है किन्तु नई मान्यताओं को स्थापित नहीं कर पाया है । यही कारण है कि मध्यवर्गीय व्यक्ति उहापोह की स्थिति को झेलता हुआ तनाव, कुंठा तथा विसंगतियों में जी रहा है ।

मानवीय जीवन में विद्रूपताओं की नई दिशाएं :-

पूर्ववर्ती अध्यायों में यह विवेचन किया जा चुका है कि आर्थिक विषम स्थितियों तथा अन्य अनेक अन्तर्विरोधों ने टूटते हुए व्यक्ति की झुंझलाहट ,आक्रोश , कुंठा आदि को अत्यधिक तीव्रतर किया है । आधुनिक व्यक्ति ऐसी दुविधात्मक स्थिति में फंसा हुआ है कि किसी एक लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाता । क्योंकि वह आज अनेक संगतियों, विसंगतियों से ग्रस्त जटिल आर्थिक विषमताओं में फंसा भ्रष्टराजनीति के कुचक्रों से टूटा हुआ है । डा0 वासुदेव शर्मा के शब्दों में --"एक ओर बढ़ती हुई मंहगाई, बेरोज़गारी, आर्थिक विषमता, स्वच्छंद यौनवृत्ति दाम्पत्य जीवन के बीच मनमुटाव आदि की स्थिति को पाकर आधुनिक व्यक्ति अधिक कुंठाग्रस्त अकेलेपन की भावना से तनावयुक्त हो रहा है तो दूसरी ओर वह सांस्कृतिक,सामाजिक,व्यक्ति नैतिक आदि जीवन मूल्यों को अस्वीकार कर रहा है ।"[1] उल्लेखनीय है कि आधुनिक

1- साठोत्तरी उपन्यासों में अंकित जीवन मूल्य- डा0 वासुदेव शर्मा-पृ0-87

शिक्षा के कारण जैसे-जैसे व्यक्ति शिक्षित होता गया वैसे-वैसे वह भौतिक सुख-साधनों की ओर आकर्षित होता गया। और उन साधनों में व्यस्त हो पति-पत्नी तथा परिवार से कटता जा रहा है। परिणाम स्वरूप उसमें तीव्र मानसिक कुंठा, अजनबीपन, अकेलापन, अलगाव, घुटन, लक्ष्यहीनता, आक्रोश आदि की नई मानसिकता व्याप्त होती जा रही है। साठोत्तरी समाज आज इन्हीं मन:स्थितियों से संघर्षरत है। जिन का चित्रण सन् 60 के बाद के नाटकों में बहुधा किया जा रहा है। "मिस्टर अभिमन्यु, चिराग की लौ, करफ्यू, उत्तर-उर्वशी, अत:किम्, घरौंदा, एक और द्रोणाचार्य, असुर सुन्दरी, रक्त कमल, लहरों के राजहंस आधे-अधूरे, रात-रानी, रसगन्धर्व, सेतुबन्ध, सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, शह ये मात, दरिन्दे, तेन्दुआ, मरजीवा, तीसरा हाथी, अपने-अपने खूँटे, व्यक्तिगत, कलंकी, हत्या एक कंस की, उलझी आकृतियाँ, त्रिशंकु, चारपाई, द्रौपदी, सूर्य-मुख, बकरी, गरीबी हटाओ, आदि अन्य अनेक नाटकों में उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग के स्तर की मानसिक कुंठाओं का वर्णन किया गया है। पाश्चात्य सभ्यता तथा स्वच्छंद यौन चेतना से प्रभावित परिस्थितियों में जी रहे उच्च वर्ग की मन:स्थिति का चित्रण - -"तेन्दुआ" की मिसिज रेनूराय तथा मिसिज मदाम के माध्यम से किया गया है। मिसिज रेनू, लिजलिजे "सोफ्ट" अपने पति से ऊब कर "कुछ रफ" पाना चाहती है। वह काम भावना से इतनी त्रस्त है कि माली की असहणीय पीड़ा में भी उसे सैक्स उत्तेजना दृष्टिगोचर होती है। मिसिज मदाम काम से कुंठित होकर माली की जांघ पर मोमबती पिघला कर अपनी तृप्ति करती है। "सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक" की रानी शीलवती

अपने नपुंसक पति की, शारीरिक सुख के आधार पर, उपेक्षा करती है । वह प्रतोष के सम्पर्क में आने के बाद ही अपने पूर्ववर्ती स्वभाव व तनाव, कुंठा के विषय में जान पाती है । "उसके एक ही स्पर्श से भड़क उठा यह लावा ----- जो कितने सालों से इस शरीर में दबा हुआ था ------ किसकी आंच का अनुभव होता था जब ---तो कहीं कुछ नहीं भाता था । ---- बिना बात महत्तारिका पर झुंझ-लाती थी । ------ बेचारे चक्रवाक को आहार नहीं मिलता था, चित्रालेख फाड़-फाड़ कर फेंकती थी, द्रुत रागों में वीणा के तार टूटते थे, बेचैन सी शैया पर करवटें बदलती थी (एक पंजा बढ़ाते हुए) और जान लो कि ---- तुम्हारा मुंह नोच लेने को मन होता था ।"[1] "लहरों के राजहंस" के पात्र सुन्दरी और नन्द दोनों अलग अलग स्तर से मानसिक तनाव व कुंठा से ग्रस्त है । सुन्दरी अपने रूप यौवन के गर्व से चूर नन्द को उलझाये है तो नन्द सुन्दरी की कामवासना तथा बुद्ध की की वैराग्य भावना के बीच तनाव ग्रस्त है । इन नाटकों के अतिरिक्त वाह रे इन्सान, दरिन्दे, उत्तर-उर्वशी, मरजीवा आदि नाटकों में उच्च वर्ग की सैक्स कुंठा के कारण टूटते दाम्पत्य, तनावग्रस्त अलगाव आदि पीड़ित व्यक्ति का चित्रण किया गया है ।

समकालीन युग में बढ़ती मंहगाई, आर्थिक संकट, बेरोज़गारी और राजनैतिक विषम परिस्थितियों में अत्यधिक शोचनीय स्थिति मध्यम वर्ग की है । मध्यम वर्ग उच्च वर्ग के समकक्ष आने के लिए रात-दिन धन प्राप्ति में संलग्न है । वह उच्च वर्ग के दम्भ को सहन न करते हुए आधुनिक कहलाने की होड़ में सामाजिक एवं नैतिक परम्पराओं को व्यक्तिगत आधार पर नकार भी रहा है, किन्तु साथ ही, संस्कार

1- सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक" - सुरेन्द्र वर्मा - पृ० 51

वश प्राचीन मान्यताओं को स्वीकार भी रहा है । इस प्रकार वह दोगली जिन्दगी जीने को विवश है । चूँकि मध्यवर्ग ही बुद्धिजीवी वर्ग भी है इसीलिए सर्वाधिक मानसिक विषमताओं, तनाव व कुंठा से त्रस्त है । "घरौंदा" कानायक सुदीप इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहता है -"मकान हमारी समस्या नहीं है ,हमारी समस्या है मध्यवर्गीय नैतिकता का बोझ ।"[1] आधुनिक महानगरीय संकट ने मध्यवर्गीय क्लर्क व नौकर वर्ग को कुंठित कर दिया है । वह आज की बोझिल परिस्थितियों को झेलने पर विवश है । सोच-विचार कर संघर्ष नहीं करना चाहता । "घरौंदा" नाटक में ही क्लर्क वर्ग का प्रतीक मिश्रा कहता है -"अब हमारी चिन्तन शक्ति समाप्त हो चुकी है बड़े बाबू । सोचते नहीं इसीलिए जिंदा हैं, सोचेंगे तो मर जायेंगे ।"[2] "उत्तर-उर्वशी" नाटक में लेखक, प्रकाशक तथा मोना की अच्छी आत्मा और बुरी आत्मा के संवादों में आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व तनाव तथा दोगले पन को उभारा है । आधुनिक परिवेश में पति-पत्नी दोनों दोहरा व्यक्तित्व लिए हुए हैं । कोई भी किसी के प्रति ईमानदार नहीं है । आधुनिक व्यक्ति बाहरी रूप से ही शासकीय भ्रष्टाचार का विरोध करता सा नजर आता है । आदर्शवादी बना रहना चाहता है । किन्तु भीतर सब स्वेच्छा से उस षड्यन्त्र के अंग बने हुए हैं । "मिस्टर अभिमन्यु" नाटक का राजन् अफसर शाही वर्ग का प्रतिनिधि है । वह ऊपरी तौर पर त्यागपत्र देने की इच्छा प्रकटकरके नौकरशाही अव्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करता है ।किन्तु असुरक्षा का सामना, सुख-सुविधा को त्यागने की सामर्थ्य न होने के कारण नौकरी से त्याग-पत्र

1- घरौंदा - डा0 शंकर शेष -पृ0-21

2- घरौंदा - ,, ,, पृ0-24

नहीं दे पाता । वह उन दोनों स्थितियों के बीच मानसिक तनाव,कुंठा आदि की मन:स्थितियों में जीता है । वह खुले मन से एक स्थिति को स्वीकार नहीं कर पाता ।"[1]

वैयक्तिक स्वतंत्रता, आर्थिक रूप से स्वावलम्बी नारी आज व्यक्तित्व विकास के लोभ में एकाकी होती जा रही है । उसके परिवार के मधुर सम्बन्ध, रिश्ते फीके पड़ते जा रहे हैं । स्व-अस्तित्व की भावना से वह टूट रही है । भौतिक चेतना से वह प्रभावित हो वह अनैतिक तरीकों से प्रमोशन लेकर अपने अहम् को संतुष्ट कर रही है । "सादर आपका" नाटक में लज्जावती पात्र के माध्यम से मानसिक रूप से कुंठित ,लेकिन भौतिकता के मोह में लिप्त नारी का चित्रण किया है । "---- मैं नींद के लिए तड़पती, तरसती घर में इस कमरे से उस कमरे में मंडराती हूं -- भूत सी । उसी में कब चली गई रोहित के कमरे में मैं नहीं जानती । यह अकेलापन एक दिन मुझे खा लेगा । खत्म कर देगा । क्या मेरा दिल नहीं है ? क्या मुझे बुरा-भला नहीं लगता ? क्या मैं नहीं चाहती कि अपने छोटे छोटे दुख-सुख किसी से बांटूं । मगर कौन है मेरा ? मैं इतनी अकेली हूं । कोई भी तो नहीं जिसके कंधे पर सिर रखकर रो सकूं । अपना जी हलका कर सकूं । कोई भी तो नहीं ।(अचानक(फिर रोने लगती है(कोई भी तो नहीं ।"[2]

मध्यम वर्गीय पढ़ा लिखा युवक नौकरी की ओर भागता है । परन्तु बढ़ती जनसंख्या तथा शिक्षितों की संख्या में वृद्धि होने से नौकरी प्राप्त करना अत्याधिक कठिन हो गया है । उस पर भाई-भतीजावाद, सिफारिश आदि के माहौल में प्रतिभाशाली युवक सही पद क्या,

---

1- मिस्टर अभिमन्यु - डा० लाल - पृ०-73

2- सादर आपका - दया प्रकाश सिन्हा - पृ०-76

छोटी-मोटी नौकरी भी नहीं प्राप्त कर सकते । नाटक "विरोध" में केतु, मासा व सिंहल शिक्षित बेरोजगार युवक हैं । इन तीन बेरोज़-गार युवकों के माध्यम से देश की बिगड़ी शासन व्यवस्था का पर्दाफाश किया है । ये तीनों कई दिनों से भूखे हैं । मासा व सिंहल केतु के हिस्से का एकमात्र केला खा जाते हैं । भूख से विह्वल तथा कुंठित केतु चिल्लाता है -"डाक्टर बनकर यह कोई ऐसी दवा ढूंढ निकाले जिससे आदमी को भूख नहीं लगे । फिर तो नौकरी तलाशने की यह कमरतोड़ नौकरी नहीं करनी पड़ेगी ।"[1] "त्रिशंकु" नाटक में भी बेरोज़गार डबल एम॰ए॰ पास युवक की विवशता, मानसिकता कुंठा तथा तनाव को उद्घाटित किया है । वह उस डिग्री तक को फेंकने के लिए तैयार हो जाता है जो उसे काम नहीं दिला सकती । वह नौकरी प्राप्त करने के लिए हाई स्कूल का प्रमाण पत्र पाने की विनती करता है ।

साहब -"मैं कुछ नहीं कर सकता ।

युवक -" कर सकते हैं आप । मेरी बी0एस0सी0,बी0ए0 और एम॰एससी॰ एम0ए0 की डिग्रियों को अपनी सुविधा के लिए रद्दी की टोकरी को हवाले कर सकते हैं और मुझे सिर्फ जाहिल हाई स्कूल समझकर नौकरी दे सकते हैं । "[2] इसी प्रकार "आधे-अधूरे" का अशोक भी बेरोज़गार है इसीलिए वह कुंठाग्रस्त होकर यौन संबंधी पुस्तकें पढ़ता है । "पेपरवेट" नाटक "लड़का" पात्र बेरोजगारी से त्रस्त है । वह सिफारिश या रिश्वत से नौकरी नहीं करना चाहता । वह देश की अव्यवस्था तथा नौकरशाही से कुंठित है ।

आधुनिक भौतिक युग में व्यक्ति इतना असन्तोषी और अतृप्त होता जा रहा है कि भौतिक सुख-साधनों को किसी भी प्रकार प्राप्त करना चाहता है । चाहे उसके लिए रिश्वत, जमाखोरी, कालाबाजारी

1- विरोध - अभिमन्यु अनन्त शबनम - पृ0-19

2- त्रिशंकु - ब्रजमोहन शाह - पृ0-61

आदि कुप्रवृत्तियों का सहारा ही क्यों न लेना पड़े । वह उच्चवर्ग की चकाचौंध में अंधा हुआ उसके समकक्ष आना चाहता है । राजेन्द्र शर्मा अपनी कमाई, भगवती चरण वर्मा कृत रूपया तुम्हें खा गया, रेवती शर्मा का "चिराग की लौ" आदि नाटकों में अर्थ वर्ग संघर्ष से कुंठित मनस्थिति का चित्रण मिलता है । - "आधे-अधूरे " की सावित्री घर के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए हर प्रकार की कीमत देने को तैयार है । "चिराग की लौ" की तारा भी अपने पति की ईमानदारी से असन्तुष्ट है । वह उच्च वर्ग की रानी के समान साड़ियों, गलीचों तथा उपहारों को प्राप्त करना चाहती है । तारा -(विद्रोह के स्वर में) हाँ, मुझसे अब तरस-तरस कर नहीं जिया जाता । मुझे तुम्हारे ख्याल नहीं चाहिये, आदर्श नहीं चाहिये । मुझे जीवन चाहिये जो आराम, रूपये और रेशम के लिए तरसते-तरसते ऐसा बे-रंग ,बे-रूप न हो जाये जैसे मैं ।"[1] अत: किम् नाटक पात्र मनोहर अपने चचेरे भाई वीरेन की चकाचौंध को देखकर "इमानदारी" आदर्श, तथा ईश्वर को नकारता है । वह अत्याधिक तनावग्रस्त होकर आत्म हत्या तक करने को तैयार हो जाता है । "बिना दीवारों के घर" के पात्र शोभा और अजित अपना स्तर तथा व्यक्तित्व बनाने की ललक में घर का सुख-चैन नष्ट कर देते हैं । इसीप्रकार रात-रानी, अपनी पहचान, टूटते परिवेश, चाय पार्टियाँ, आला अफसर , आदि अन्य अनेक नाटकों में भौतिकता से संघर्षरत कुंठित , तनावग्रस्त, व्यक्ति का चित्रण किया गया है ।

समकालीन राजनीति ने भी आम व्यक्ति को विशेष रूप से प्रभावित किया है । स्वातंत्र्योत्तर पश्चात् की राजनीति आम व्यक्ति

1- चिराग की लौ - रेवती सरन शर्मा - पृ0-32

से जुड़ गई है । साथ ही आदर्श विहीन भी होती जा रहा है । नेता व्यक्तिगत स्वार्थ को दृष्टि में रखकर राजनीति में प्रवेश करने लगा है । आज प्रजातन्त्र पैसों में बिक रहा है । पाँच रूपये और एक शराब की बोतल में वोट खरीदे जा रहे हैं । आज प्रत्येक व्यक्ति इस भ्रष्ट राजनीति से भली-भाँति परिचित है । उसके षड्यन्त्रों से कुंठित है । "राम की लड़ाई" नाटक में सरजू अपना तीव्र आक्रोश व्यक्त करता है - --"एक धनुष से टूट कर सबको अलग-अलग आजादी/ऐसी आजादी, पशु की आजादी है । तभी हमें हाँकने वाला एक चरवाहा चाहिये । हर पाँचवें वर्ष हम वही चरवाहा चुनने को मजबूर होते हैं ।"[1] आज की राजनीति मध्यकाल की सामन्तशाही का ही बदला रूप हो गई है । आज वह जन साधारण को नई दिशा निर्देश नहीं करती अपितु युवा पीढ़ी को व्यक्तिगत स्वार्थ के आधार पर दिशाहीन बना रही है । आधुनिक व्यक्ति की नियति ही बन गई है राजनीति में घुट कर जीने की । "आज नहीं तो कल" नाटक का पुरूष पात्र कहता है --(पुरूष विक्षिप्तों की तरह रोता है) हम साले बन्दरों की औलाद हमारी गर्दनें मदारियों की रस्सी में बंधी रहेंगी ------ वह डुगडुगी बजायेगा और हम नाचेंगे ----- यही हमारी ----- नियति है ।"[2] इसी नाटक में "जनता" की प्रतीक युवती पात्र अपने मानसिक तनाव को व्यक्त करते हुए कहती है -"कहाँ गये सारे वादे ? ----- कहाँ गये सारे सपने ?+--- ओ हमें दूसरी आजादी का ख्वाब दिखाने वालो । क्या तुम्हारी आजादी का मतलब यही था कि हर रोज सरे आम

1- राम की लड़ाई - डा0 लक्ष्मीनारायण लाल -पृ0 58
2- आज नहीं तो कल - सुशील कुमार सिंह - पृ0 31

हमारी अस्मत नीलाम हो ? (क्षणिक मौन) हमें कुयें से निकालकर खाई में ढकेल दिया गया ---- अब हमारे एक ओर कुंआ है और दूसरी ओर खाई, हम किधर जायें ?"[1] समकालीन भ्रष्ट नेता राजनीति से "नीति" निकाल कर "राज" कर रहे हैं । देश-विदेश से करोड़ों का कर्ज लेकर अपना घर भरते जा रहे हैं । और उस कर्ज में पिस रही है निरीह जनता । "तू-तू" नाटक में शराबी एक कहता है -----"और इसी तरह इस बस्ती के रहने वालों के हरेक सर के हिसाब से एक लाख का कर्ज है । जो हमारी मृत्यु के बाद हमारे बच्चों के कंधों पर चट्टान बन कर रह जायेगा । इस तरह सदियों तक यह चट्टान कंधे से कंधा मिलाकर सब को शिथिल और खंखड़ कर देगा । कोई इस पत्थर से बचा नहीं है । सब बारी-बारी से कुचले जा रहे हैं ।"[2] इन नाटकों के अतिरिक्त - कथा एक कंस की, भस्मासुर, सम्भवामि युगे-युगे, एक गधा था उर्फ अलादाद खा, रसगन्धर्व, रोशनी एक नदी है आदि अन्य अनेक नाटकों में राजनीति से उत्पन्न मानसिक तनाव, कुंठा आदि को अभिव्यक्त किया गया है ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक व्यक्ति आज विषम परिस्थितियों में जी रहा है । उच्च वर्ग जहां अत्याधिक स्वच्छंदता, यौनाचार से टूटते परिवार से कुंठित है, वहीं मध्यम वर्ग आर्थिक संकट, बेरोजगारी ,अंधानुकरण के कारण टूटते सामाजिक,राज-नैतिक मूल्यों के कारण अत्याधिक कुंठित तथा तनावग्रस्त है । एक ओर वह वैयक्तिकता के आधार पर सामाजिक मूल्यों का विरोध करता है

1- आज नहीं कल - सुशील कुमार सिंह - पृ0-30

2- तू- तू - अस्थानन्द सदासिंह - पृ0-55

तो दूसरी ओर समाज से जुड़े रहने के कारण उनको स्वीकार भी रहा है । वह इस संघर्ष में टूटा हुआ, अजनबी, कुंठित तथा मानसिक रूप से शिथिल हो गया है । इसी आधुनिक मनस्थिति का वर्णन साठोत्तर नाटकों में यथार्थ एवं व्यापक रूप किया गया है ।

मूल्यांकन

पंचम अध्याय के समग्र विवेचन से निम्नलिखित तथ्य स्पष्टत: उभर कर सामने आते हैं कि समसामयिक वैयक्तिक-चेतना निरन्तर व्यक्ति पर हावी होती जा रही है जिसने व्यक्ति की मन:स्थिति को संकुचित बना दिया है । आधुनिक व्यक्ति की दृष्टि इतनी संकीर्ण हो गयी है कि वह अपने दायरे के बाहर देख पाने में असमर्थ सा हो गया है । बौद्धिकता तथा वैज्ञानिकता के धरातल पर खड़ी वैयक्तिक चेतना ने आधुनिक व्यक्ति में व्यक्ति स्वातंत्र्य, अहंबोध ,स्वाभिमान आदि के भाव बोध को विकसित किया है । इस प्रवृत्ति के द्वि-पक्षीय परिणाम दृष्टिगोचर हो रहे हैं । एक ओर नारी वर्ग, मजदूर वर्ग, अछूतवर्ग आदि में अभूतपूर्व जागृति एवं आत्मविश्वास का उदय हुआ है । तो दूसरी ओर इन प्रवृत्तियों ने स्त्री-पुरूषों के विचारों को प्रभावित कर उनके जीवन को आलोड़ित किया है ।

आज प्रमुखत: नारी वर्ग में स्व-अस्तित्व की भावना बलवती होती जा रही है जिसने पारिवारिक मूल्यों तथा आदर्शों को विशेषत: प्रभावित किया है । आधुनिक शिक्षित आत्मनिर्भर नारी न तो पति की गुलाम रह गयी न ही पति को परमेश्वर के रूप में देखती है । अपितु वह पति की सहचरी बन कर अपने स्वाभिमान की रक्षा करती हुई देश व समाज के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह करती है ।

सम-सामयिक वैज्ञानिक परिवेश तथा पाश्चात्य अंधानुकरण से प्रभावित भौतिक वादी चेतना ने संयमित व मर्यादित यौन वृत्ति को प्राकृतिक व नैसर्गिग भूख का सर्टिफिकेट देकर उन्मुक्तता प्रदान की । यही कारण है कि स्वच्छंद वृत्ति के तेज झोंकों ने नैतिक व धार्मिक मूल्यों को जड़ से हिला दिया है । इस प्रवृत्ति ने कहीं परिवारों को तोड़ा है तो कहीं जाति-पाति ऊंच-नीच के भेदभावों को नगण्य मान कर परिवारों को जोड़ा भी है ।

आधुनिक परिवेश में बनते बिगड़ते परिवारों तथा खंडित-मंडित होती नैतिक तथा सामाजिक मान्यताओं ने मध्यवर्गीय व्यक्ति के समक्ष ऊहापोह की स्थिति को उत्पन्न कर दिया है क्योंकि उच्च वर्ग साधन सम्पन्न होने के कारण सदैव सामाजिक व्यवस्था को अपने अनुरूप ढालता रहा है और निम्न वर्ग असहाय व असमर्थ होने के कारण सामाजिक व्यवस्था की उपेक्षा का पात्र रहा है । इसलिए मध्य वर्ग ही आधुनिक जीवन की विषमताओं ,विद्रूपताओं तथा जटिलताओं का एकमात्र भागी रहा है । तनावग्रस्त, कुंठित, अपमानित सा दोहरी जिंदगी जीने को विवश ,मध्यवर्गीय व्यक्ति परम्पराओं को त्यागने व अपनाने की मन:स्थिति से संघर्षरत है । इन विषम परिस्थितियों से युवा पीढ़ी ही मुख्यत: त्रस्त, व्यथित व "मूर्तिभंजक" व अक्रोशित हो उठी है । आलोच्यकालीन नाटक आधुनिक व्यक्ति की व्यथा को वाणी देने में समर्थ सिद्ध हो रहे हैं । "देवयानी का कहना है" की देवयानी, "अपनी पहचान" की अपर्ण, "बिना दीवारों के घर" की शोभा, "वाह रे इन्सान" के कान्ति और तुलसी, बौद्धिकता स्व अस्तित्व व स्वाभिमान की भावना से ओतप्रोत हैं ।

"सादर आपका" की लज्जावती, "द्रौपदी" की अलका व अनिल, "देवयानी का कहना है" की देवयानी, "उत्तर-उर्वशी" की मौना,

'आधे-अधूरे' की सावित्री, 'तिल चट्टा' की केशी, 'तेंदुआ' की रेना राय और मिसेज मदान आदि ऐसी नारियाँ हैं जो भौतिकता पाश्चात्यता से प्रभावित होकर स्वच्छंद यौनवृत्ति अपनाती हैं।

बौद्धिकता तथा पाश्चात्य प्रभाव से सम्पृक्त होती वैयक्तिक चेतना ने राजनीति व आर्थिक प्रणाली को अछूता नहीं छोड़ा है। स्वातंत्र्योत्तर भारत की व्यक्ति व्यक्ति से जुड़ती राजनीति पर देश की परिस्थितियाँ व जनता की मन:स्थितियों का रंग जमता जा रहा है। प्रतिक्रिया स्वरूप राजनैतिक तथा आर्थिक परिवेश ने वैयक्तिक चेतना को किस धरातल तक प्रभावित किया है - इसका विस्तृत विवेचन अगले अध्याय में किया जायेगा।

-::-